कै मधुवन तैं नंद–लाडिलौ कै[1] एक दूत पठावै।
भँवरा एक चहूँ दिसि उडि-उडि कान लागि-लागि गावै।।
भामिनि एक कहति सखियनि सौं नयननि[2] नीर ढरावै[3]।
'परमानंद' स्वामी रति–नागर हे ब्रजनाथ ! मिलावै।।

१०४६ **(सारंग)**

हरि–कथा कहि मधुकर प्यारे।
हमहि[4] सुनावहु अब की लीला।
आपुन मधुवन कहा करत हैं
कुबिजा मिलें कौन गुन–सीला।।
कैसें कंस बध्यौ रिपु मारे कैसें गज के दंत उपारे।
कैसें धनुष भाँजि सिसु केसब[5] उय मल्ल रंग–भूमि में मारे।।
कैसें बसुदेव[6] बंदि छिडायौ कैसें उग्रसेन भयौ राजा।
कैसें नंद गोकुलहिं पठाए आपुन रहे हैं सु कौन काजा।।
तब[7] षटपद प्रति–उत्तर दीनौं
तुम्हारी बात निसि–दिनहिं चलावत।
'परमानंद' प्रभु जदपि पर–पुरी
तुम्हारी बात उनके जिय भावत।।

१०४७ **(सारंग)**

• सुनु सखि ! प्रीतम के संदेस।
हम सौं कहि पठए ब्रजबल्लभ गुपत ज्ञान–उपदेस।।
हम जु कहत हैं तुम्ह न मानसि[8] हौ हृदै विरह की पीर।
बाहु–बिसाल कमलदल–लोचन भावत स्याम सरीर।।
तद्दपि[9] कछु करिए परमारथ आज्ञा–भंगु न होइ।
पाछें हमहिं विचार परहिंगी[10] सुदृढ करहिंगे[11] सोइ।।
हास–बिलास प्रेम–अबलोकनि परिरंभन नख–पाँति।।
'परमानंद' प्रभु उय[12] कत कीनी जो पै जिय इहि भाँति।

---

१. कोऊ दूत (ग. ङ. छ.) २. नैन नीर ढरि आवै (क) ३. बहावै (ग. ङ. छ.)
• बहुरि० से भी प्रारंभ (घ) ४. हमहुँ (ख) ५. कैसें वह (छ.)
कैसौ वह (ङ.) ६. बसुद्यौ (ङ. छ.) ७. तौ षटपदै प्रति–ऊतरु (ङ. छ.)
• सुनहु (क. ग. ङ. छ.) सुनि हो सखी ! (घ.) से भी प्रारम्भ
८. मानिहौ (क. ग. घ. ङ. छ.) ९. जद्यपि (क.), १०. परहिंगे (क. ग. ङ. छ.)
११. करेंगे (क. घ. ङ. छ), १२. वह (ग. घ. ङ. छ.)

१०४८ (सारंग)

बातें कहत बनाइ–बनाइ।
करचक[1] प्रेम हुतौ या ब्रज में सो इनि मधुकर खोयौ आइ।।
संचित करि राख्यो उर–अंतर जैसै इत–उत निसरि न जाइ।
थोरी पुँजी हरै ज्यों तस्कर बपुरौ रंक मरै पछिताइ।।
कमलनयन की मोहन–लीला जीवति[2] हैं गाइऽब गाइ।
'परमानंद' सबै इनि खोई निर्गुन कथा सुनाइ–सुनाइ।।•

१०४९ (सारंग)

हम हिं गोपाल सों निज नातौ।
बृंदावन महिं ग्वालनु के सँग करतल भोजन खातौ।।
कबहुँ कदँब–तर टेकि लकुटिया ठाटे कहते बातौ।
कबहुँ[3] चरन एक राखि चरन पर त्रिभंग-ललित मुसिकातौ।।
आनि मिलावहु[4] भाँवति मूरति–ज्ञान जोग करि हातौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर बेनु–नाद रँग–रातौ।।

१०५० (सारंग)

ऊधौ ! तुम हौ निकट के बासी।
इहि परमारथ समुझि कहहु अब नाम बडौ किधौं कासी।।
ज्ञान ध्यान जोग आराधन साधन मुक्ति उदासी।
आन प्रकार कहूँ सचु नाहीं जैहें स्याम–उपासी।।
परमारथी जहाँ[5] लगु जेते बिरहिनि के दुखदाई।
'परमानंद' स्याम–रँग–राची नाहिंन जोग–सगाई•।।

१०५१ (सारंग)

हरि मनु औरहि ठौर धर्‌यौ।
इहि[6] जानि ही बसीठी झूठी इहाँ ऊँ तेंऽब टर्‌यौ।।

---

१. रंचक (ग.), २. जीजति (ग.)
• पद सं. ४४११ पर सूरसागर में भी।
३. एक चरन पर धरें री ! तृभंग (ग. ड. छ.), एक चरन सखि ! (क. घ.)
४. मिलावतौ (छ.), ५. स्वारथ (छ.)
•• पद सं० ४२८७ पर सूरसागर में भी
६. इहै जानि (ग. घ. ङ छ.)

जबहु कृपा करी या बन पर मृग उनि मानु चर्‌यौ।
गनिका आदरु करति पुरुष कौं देखति द्रव्य भर्‌यौ।।
जो[1] सनेहु हौ हम पहिलें सौ अब पार पर्‌यो।
'परमानँद' प्रभु ऐसैं मधुकर बहुतनि बाझ सर्‌यौ।।

१०५२ (सारंग)

मथुरा हूँ धेनु चरावत हैं।
राम–समेत जसोदानंदन ऐसें[2] बेनु बजावत हैं।
कोउक[3] ग्वाल कहत ऊधौ–प्रति अँग सिंगार बनावत हैं।
मोरमुकट गुंजा बनमाला गोप–भेष बनि[4] आवत हैं।।
वे[5] ब्रजनाथ नंद के नंदन बल्लव जाति कहावत हैं।
करतल पात भात ता ऊपर सँग के सखनि[6] जिंवावत हैं।।
सुंदर भवन मनोहर छाजे सब काहू देखरावत हैं।
'परमानंददास' कौ ठाकुर रति–रस–प्रीति बढावत हैं।

१०५३ (सारंग)

जतिया–चारे के नाँते दिन दस मिलि रहिवौ।
और पाँहुनई कहा है हमारे माखन दूध दह्यौ खैबो।।
राम–कृष्ण सौं बिनती कीबी दोऊ बीर के पाँइनि परिबौ।
बाल–बिनोद सुमिरि नँद–नंदन
तब गोकुल कौ गमन करिबौ।।
ऊधौं–हाथ सँदेसौ पठयौं[7] भब बूडत ब्रज उद्धरिबौ।
'परमानँद' प्रभु[8] करुना–सागर
मेटहु आइ बिरह कौं[9] जरिबौ।।

१०५४ (सारंग)

मथुरा काहे कों हौं आउँ।
इहि झूठी मनुहारि मधुप ! सुनि जोपै हरि हिं न भाउँ।।

---

१. *जे सनेह हम पर पहिलें होते सब (घ)*
२. *वैसे (ग. घ. ङ. छ.), ३. को एक (ख)*
४. *धरि (घ. ङ. छ.), ५. उहाँ (घ) अब ङ. छ.)*
६. *सखा (घ), ७. दीनौं (क. ग.)*
८. *स्वामी करुनामय (क. ग. घ. ङ. छ.)*
९. *बिरह जरिबौ (क. घ. ङ. छ.) दुख जरिबौ (ग.)*

जानति हौं तुम मोहि बुलावत हरि कौ दरसन पाउँ।
या ते औरु कहा चाहति हौं संग मिलें गुन गाउँ।।
महत–हीन आदर–बिनु षटपद ! ऐसी बात बहाउँ।
जो पैं प्रभु दासी करि मानैं तौ पाँइ लागि मनाउँ।।
तुम चलि जाहु स्यामसुंदर पैं बहुरि सँदेस पठाउँ।
'परमानँद' स्वामी जो आवहिं विरह–ताप बिसराउँ।।

१०५५ **(सारंग)**

तब जु[1] पलटि लेते बसन।
आधी बाँटि मो[2] कहँ देते बीरी खंडित दसन।।
अब उह प्रीति कहाँ गई प्यारे ! कंध भुजा धरि हसन।
बारंबार हु नाम उचारत[3] ठालि[4] न देते रसन।।
इहि कहिबी जदुनंदन[5] आगें भूलि गए ओय[6] जसन।
'परमानंद' प्रभु तेरे बिछुरें काम–भुजंगम[7] डसन।।

१०५६ **(सारंग)**

प्रीतम तब जु बेनी गुहत।
बोलत हसि स्यामसुँदर[8] धवरी अध दुहत।।
अब तौ मन[9] और भयौ मधुवन के रहत।
अनरुचि ब्रज–ऊपरि भई[10] अब सँदेसु कहत।।
देखे–बिनु बदन–रूप नैन–नीरु बहत।
'परमानँद' इहि वियोग कठिन प्रान सहत।।

१०५७ **(केदारौ)**

तौ संभवै सरीर होइ जो मिलिबै कौ अनुमानु।
हरि अनंत निरगुन अविनासी निराकार भगवानु।।
कहा कहत हौ तुम कहा संचै[11] बचन तुम्हारे।
अब का के पठये आए हौ मदनगोपाल पियारे।।

---

१. जो (ग. घ. ङ. छ.), २. मो कौं (क. ग. घ. ङ छ.)
३. उच्चरते (ग. घ. ६. छ.), ४. ठोली (क. ग. घ. ङ. छ.)
५. नँदनँदन (क. ग. घ. ङ.), ६. वह (ग. घ. ङ. छ.)
७. भुवंगम (क. ग. घ. ङ. छ.), ८. स्यामघन–सुंदर (क)
६. जिय और भई (क. ग. घ. ङ. छ.), १०. ठई (ग. क.)
११. और साँचे (ङ. छ.) औरें साँचें बोल तिहारे (ग.)

ज्ञान-दसा हमरें[1] नहिं उपजी अति सकाम ब्रज-नारि।
'परमानंद' प्रभु देखें जीजै सुंदर रसिक मुरारि।।

१०५८ (सारंग)

माधौ ! जानि जाहु ओइ[2] बतियाँ।
जेठ–मास जमुना–जल–भीतर जब खेलत[3] हिं[4] लतियाँ।।
निरमल चंदु पून्यौं कौ तेउ सरद की रतियाँ।
परिरंभन अवलोकित[5] सनमुख निरति[6] करत हे गतियाँ।।
वृंदावन बिहरत नँदनदंनु सुरति करत हे[7] भतियाँ।।
'परमानंद' स्वामी रति–नागर कहा सचु पठए पतियाँ।।

१०५९ (सारंग)

काहे लाल ! भूल्यौ प्रेम–बतउआ।
बृंदावन सुख–सेज्या–कारन तोरत फिरत पतउआ।।
कहिबी जाइ स्यामसुंदर–प्रति पाले हंस के छउआ।
टेढे अंग नीच नव लालच जाइ निवाजे कउआ।।
भले लोक तुम सब विधि नागर बेगिहि भए बटउआ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर पठए मधुप चलउआ।।

१०६० (सारंग)

गुपति मते[8] की कहति कहौ जिनि काहू के आगें।
कै हरि जानें कै तुम ऊधौ ! इतनीयें पें माँगें।।
एक बार[9] खेलत बन–महियाँ मैं जु जनाइ भूख।
पाके फल तब देखि मनोहर चढे कृपा करि रूख।।
एक दिवस[10] बिहरत बन हरि[11] सँग कंटक चुभि गयौ पाइ।
कंटक हिं[12] करि कंटक काढ्यौ अपने हाथ लगाइ[13]।।
ऐसी केती[14] हमारी–उन्ह की जब हौ गोकुल–बासु।
'परमानंद' प्रभु सब[15] बिसराई मधुवन कियौ निवासु।।

---

१. हमारें (ङ. छ.), २. वेइ (ग. छ.), ३. वे गहे लतियाँ (ङ. छ.)
४. है लतियाँ (ग), ५. अवलोकन (ग), ६. नृत्य (ङ छ.), ७. इहि (ग. ङ. छ.)
८. समै (छ.), ९. समै (ग. क.), १०. द्यौस (क. ग. घ. ङ. छ.)
११. अतंर (क. ग. ङ. छ.), १२. ही सों (ग. ङ. छ.)
१३. सुभाइ (ग), १४. कितनी (घ)
१५. सबैं बिसारी कियौ मधुपुरी (क. ग. घ. ङ. छ.)

१०६१ (सारंग)

मधु–माधौ नीकी रितु आई।
खेलन जोग अबहि वृंदावन कमलनयन हरि ! देखहु आई[1]।।
मंद सुंगध बहै मलयानिल कोकिल कूजनि[2]–गिरा सुहाई।
मदन–महीपति कोपि पलान्यौं
दहौं[3] दिसि जाकी फिरी दुहाई।।
पथिक बीर ! संदेस हमारौ
चरनकमल गहि कहियहु जाई।
'परमानंद' प्रभु अवधि बदी ही नाथ ! कहा औसेर लगाई।।

१०६२ (सारंग)

मोहन ! बिसरि गई वह बानि।
जो[4] माँगती प्रीति के कारन[5] सोई देते आनि।।
नीके[6] फूल सुगंध द्रुम–ऊपर तोरते मनोहर पानि।
कमलनयन मेरे सुख[7]–कारन भए सकल रस[8]–दानि।।
सब कहिबी जदु[9] नंदन आगें छाँडि सकुच मन–कानि।
'परमानंद' प्रभु जद्दपि राजा बहु बनिता के मानि।।

१०६३ (सारंग)

माधौ ! गोकुल अपनौ गाउँ।
ब्रज की सुधि काहे बिसरावत तुम्हरे[10] बाप[11] कौ बडौ[12] नाउँ।।
उद्धव सौं मनुहारि करति सब पहुनाचारे लाल मिलाहु।
'परमानँद' स्वामी तुम्ह नागर मेटहु आइ बिरह दौ[13] दाहु।।

१०६४ (सारंग)

अब मन बसी गोपाल–मूरति।
कमलनयन भावै उह सूरति।।
जद्यपि मधुप ज्ञान दिखरावै।
हमारी आँखिनि–तर हुँ न आवै।।

---

१. माई ! (ख.), २. कूजति (ङ छ.), ३. दस (छ), ४. जब (क. छ.)
५. कानन, ६. पाके फूल चढि द्रुम पर (ग.)
७. हित (क. ग. घ. छ.), ८. सुख (क. ग. घ. छ.),
९. नंद (घ), १०. तुम्हारे (घ. ङ. छ.),
११. बवा (घ.), १२. बडौई (ग. ङ. छ.), १३. की दाह (घ.)

दूरि बहाऊँ इहि उपदेस।
जीउ डरत है सुनत सँदेसु।।
चलत चारु गति मोहन–बानी।
'परमानंद' मिलहु (प्रभु) आनी।।

१०६५ (सारंग)

ऊधौ जी[1]! मिलत ही लै धरियो पाँइ पाती।
सनमुख वचन कहियो माधौ सौ
अति दुख–भरि मेरी छाती।।
बहुतै कहा लिखियें पतियनि में बिलपति रयनि बिहाती।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें बिरह भयौ संघाती।।

१०६६ (सारंग)

ऊधौ भए बिदेसी माधौ।
जब तें ब्रज तजि गए मधुपुरी उहाँ न प्रेम अब आधौ।।
ओइ[2] जादौ–पति हम बनचारी कैसें बनें सगाई।
जो घुँघची सोने–सँग तोली इतनी[3] बहुत बड़ाई।।
अब उह सुरति जब आवति है वृंदावन–द्रुमराजी।
जमुना-पुलिन-समीर सु सीतल रास-केलि तब साजी।।
'परमानंद' प्रीति गोपिनि की नयन रहे अरुझाई।
बिनु गोपाल गोकुल के बासी निमिष कलप-सम जाई।।

१०६७ (सारंग)

बारक गोकुल तन मन कीबौ।
गोपी–ग्वाल गाँइ बनचारी अपनौं दरसन दीबौ।।
ए सब लोग बिरह के कारन अंत कहाँ लगु[4] लीबौ।
मथुरानाथ कृपा के सागर ! तुम्ह बिन कैसौ जीबौ।।
चरनमल गहि बिनती कीनी इहि सँदेस मुख कहिबौ।
'परमानँद; स्वामी सुख–सागर सुनि कै नाहिंन रहिबौ।।

१०६८ (सारंग)

प्रीति पुरानी जिनिऽब करहु[5]।
बलि–बलि जाउँ नंद के नंदनु चितु[6] जिनि अनत धरहु।।

---

१. जू (ग. ङ. छ.), २. वे (ग. घ. ङ. छ.), ३. इसलिये (ग. घ. ङ. छ.)
४. लौं (क. ग. घ. ङ. छ.), ५. करौ (ग. ङ. छ.), ६. तजि अनतें न धरौ (क.ग.ङ.छ.)

ऊधौ ! कहियो कमलनयन सौं ब्रज–कुल[1] अपनौं गाउँ।
नंद–जसोदा सौं निज नाँतौ जानि तुम्हारौ नाउँ।।
तुम्हारे चरनकमल कौ अनुदिन सुनि ब्रजनाथ नरेस !
'परमानंद' मिलन अब नाँही गर्ग कहै[2] उपदेस।।

१०६९ (सारंग)

गोकुल सब गोपाल–उपासी।
जे[3] गाहक साधन के ऊधौ ! ते[4] सब बसत ईस–पुर कासी।।
जद्यपि हरि हम तजीं अनाथ करि
अब छाँढति क्यों रति[5] की गासी[6]।
अपनी सीतलता नहिं छाँडत
यद्यपि बिधु[7] राहु भयौ ग्रासी।।
किहिं अपराध जोग लिखि पठयौ
प्रेम–भजन तें करत उदासी।
'परमानँद' ऐसी को बिरहिनि
माँगति[8] मुकति छाँडि गुन–रासी• ।।

१०७० (सारंग)

कहियो अनाथ के नाथहिं !
स्याम–मनोहर सब चाहति हैं बहुरों[9] तुम्हारे साथहिं।।
बार–बार बिरहिनि ब्रज–बनिता सुमिरति है गुन–गाथहिं।
मुरली अधर लोल कर–पल्लव ध्यान करति उहि हाथहिं।।
लोचन सजल प्रेम–बिरहातुर फुनि–फुनि ढोरति माथहिं।
'परमानंद' मिलन बहुरि कबहूँ दुखित निहारति पाथहिं।।

१०७१ (सारंग)

मेरे मन गह्यौ माई ! मुरली कौ नाद।
आसन पवन ध्यान इहै[10] जानौ कौन करै अब बाद–बिबाद।।

---

१. पुर (ग. क.)
२. गरग–वचन (क. ग.), ३. जो (ग. घ. ङ छ.)
४. सो (ग. घ. ङ. छ.), ५. रस (ङ. छ.), ६. जासी (ग. घ. ङ. छ.)
७. विधू राहु है ग्रासौ (क. ग. घ. छ. छ.), ८. मांगै (ग. ङ. छ.)
• सूरसागर पं० सं० ४५४६ पर भी,
९. बहुरयौ (ग. ङ. छ), १०. नहिं (ग. घ. ङ. छ.)

मुक्ति देहु संन्यासिनि कौं हरि !
कामिनि देहु काम की रासि।
धर्मीनु देहि धर्म कौ मारगु
मेरौ मनु रहौ पद–अंबुज–पासि।।
जो कोउ कहैं ज्योति सब या महिं
सपनें न छुहें[1] तिहारौ जोग।
'परमानंद' स्याम–रँग–रातौ
सबै सहौं मिलि एक अँग लोग।।

१०७२ (सारंग)

बहुरि कालीदह काली आयौ।
मदनगोपाल तबहि काहे को रमन–द्वीप पठायौ।।
पथिक ! सँदेस कहियहु हरि ब्रज काहे बिसरायौ।
नंदकिसोर अकेलेइ तुम–बिनु सब गोकुल दुख पायौ।।
सब विपरीति भई इहि औसर बिषम भयौ हरि कीनौं।
'परमानँद' प्रभु तुम जग–मोहन ! रूप–तेज हरि लीनौं।।

१०७३ (सारंग)

मोहन ! परदेस रह्यौ इहाँ इहि सूत।
समाधान करिबे कौं पठयौ है दूत।।
अब लौं ए प्रान रहे आवनि की आस।
एते दिन अवधि गनत बीते ब्रज–बास।।
नैननि नहिं[2] घट्यौ नीर मुख न घटे स्वास।
झंखत तन–रूप घट्यौ 'परमानंददास'।।

१०७४ (सारंग)

सु रहौ ऊधौ ! तुम्हारी बसीठी।
आपुन मधुबन पाँउ धारिये बिनु गोपाल बात सब सीठी।।
इहि[3] सँदेस कैसै मानैं पै कमलनयन लिखि पठई पाती।
कारे कागद बाँचि सुनावहु[4]
इन्ह मँह कहाँ सरद की राती।।

---

१. छुएँ (ङ. छ.), २. है पूरे नीर (ङ. छ.)
३. ए संदेस (ग ङ. छ.), ४. सुनाऔ या में (ङ. छ.)

'परमानंद' स्वामी के आगें तुम सो दूत और पुनि कोउ।
को ऐसौ बिरहिनि ज्ञान मानति है
हमकौं आनि दिखावहु सोउ।।

१०७५ **(सारंग)**

माधौ ! आइबौ दिन च्यारि।
पहिले उ[1] पहिचानि नागर उहै प्रीति सँभारि[2]।।
बिरह तोर[3] मरति मोहन ! रयनि नींद[4] न नारि।
बाल–लीला सुमिरि झंखति कुंज–पुंज मुरारि।।
कहियो ऊधौ ! कान्ह–आगें बसत घोष उजारि।
'दास परमानंद' स्वामी उपरि उलटी सारि।।

१०७६ **(सारंग)**

• उह सुधि कमलनयन बिसराई।
मधुवन बसत और चित कीनौ बात सँदेसनि आई।।
एक दिवस बिहरत कानन–मँह[5] कंटक अटकी सारी।
ठाढी राखि बाँह गहि मोहन अपनें हाथ निवारी।।
ऐसी बहुत[6] गुपत की चरचा कहाँ लगु बरनौं माई !
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें बिधि सौं कछु न बसाई।।

१०७७ **(सारंग)**

•• इन्ह बातनि के मारे मरियत।
निर्गुन ज्ञान मधुप लै आए
बिनु गोपाल कैसै निस्तरियत।।
सबै अटपटी कहै रे मधुकर ! सुनी सखी ! मधुवन की रीति।
कौन हाल हमारे ब्रज बीतत जानतु नहीं बिरह की रीति।।
बुझी अग्नि बहुरयौ सिलगाई अंतरगत बिरहानल जारत।
'परमानंद' स्वामी सुख–सागर
मिलि काहे न तन–ताप निवारत •••।।

---

१. हूँ (छ), २. विचारि (घ. ङ. छ.)
३. तेरे (क. ग. ङ. छ.), ४. दिन नर–नारि (ग. घ. ङ. छ.)
• वह० (ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारंभ
५. में (क. ग. घ. ङ. छ.), ६. किती (ग.) केति (क)
•• इनि० से भी प्रारम्भ
••• पद सं० ४४१० पर सूरसागर में भी

१०७८ (सारंग)

गोपालहिं पठै देहु हौं देखौं।
एक बार मिलि जाउ पाहुने ! जनम सफल करि लेखौं।।
कहियो जाइ सँदेसौ ऊधौ ! जहाँ देवकी मात।
तेरौ पूत ठगि गयौ जु हमकौं घर–बन कछु न सुहात।।
बारह बरस रहे ब्रज–भीतर सो पहिचानि बिसारी।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें मरतीं बिरह की मारी•।।

१०७९ (सारंग)

सँदेसनि क्यों निघटित दिन–राति
जब लगि कान्ह कमल-दल-लोचन देखति नहिं उहि भाँति।।
स्रवननि सुनौं मनोहर बानी वा मुरली की जाति।
रितु–बंसत कोकिल कल कूजत जहाँ बरहा बन–पाँति।।
अब इहि भूमि स्यामसुंदर–बिनु धाइ–धाइ है खाति।
'परमानंद'[1] विरहिनी गोपी बार–बार बिलखाति••।।

१०८० (सारंग)

पतियाँ बाँचे हू न आवै।
देखत अंक नयन जल पूरै गदगद प्रेम जनावै।।
नंदकिसोर सुहथ अक्षर लिखि ऊधौ–हाथ हठाये।
समाचार मधुवन–गोकुल के मुखहि बाँचि सुनाये।।
ऐसी दसा देखि गोपिनि की भक्ति–मर्म तब[2] जान्यौं।
मन–क्रम–बचन–प्रेम पद–अंबुज जन[3] 'परमानंद' मान्यौं।।

१०८१ (सारंग)

ऊधौ ! क्यों बिसरत उह विनोद हरि की लरिकाई।
कहते जब मधुर बचन बाबा अरु माई।।
रेंगत[4] जब आँगन में करदम लपटानी।
धाइ[5]–धाइ लै उछंग झारति नँदरानी।।

• *पद सं० ४७०४ पर सूरसागर में भी*
१. *'परमानंद' प्रभु विरहिनि (ङ)*
•• *पद सं० ४३६१ पर सूरसागर में भी*
२. *सब (घ), ३. 'परमानंद मन' (ग. घ. ङ. छ.)*
४. *आँगन की रेंगनि कछु (क.)*
५. *लै उछंग चूँबति मुख पुनि–पुनि (क)*

गहते जब माट मथत करते हठि[1] झगरौ।
खेलत रमनीय[2] भूमि गाइनि कौ बगरौ।।
ऊधौ[3] ! ब्रज–बास देखि नांहिन जिय[4] रहतौ।
'परमानंद' स्वामी गोपाल अंचल जब गहतौ•।।

१०८२ (सारंग)

मधुप ! बार–बार सुरति आवै हरि की वह बानि।
सुंदर मुख चंचल कर हँसि–हँसि लपटानि।।
जा कारन गोकुल बसि परिहरी कुल–कानि।
तेई गोपाल मधुवन बसि मेटी पहिचानि।।
तुम हू तौ सुनियत हौ जदुकुल के मानि।
'परमानँद' स्यामसुँदर[5] मिलबहु किनि आनि।।

१०८३ (सारंग)

लै चलि ऊधौ ! अपने संग।
नंद कुमार राज–लीला धरि लै दिखाउ श्रीपति के रंग।।
बसत समीप मरम नहिं जान्यों अति भोरे गोकुल के लोग।
तजि बैकुंठ बाल[6]ग्वालनि में
कवन पुन्य तैं भयौ है सँजोग।।
जब हम दाम[7] उलूखल बाँधे
नाम धर्‌यौ प्रभु माखन–चोर।
सो अपराध मिटै अब कैसै खुनस करै जो नंदकिसोर।।
प्रीतम बहुरि मिलै जो कबहूँ
चरन–कमल गहि लाउँगी पोष।
'परमानंद' स्वामी सुख–सागर
दीनदयाल धरौ जिनि दोष[8]।।••

१०८४ (सारंग)

•••अपनौं पहिलौ प्रेम बिचारिबौ।
ऊधौ ! जाइ चरन गहि कहियो चित कौ हितु न उतारिबौ।।

---

१. कछु (क.), २. रमनीक (क), ३. अब तौ (क.) ४. मन (क.)
• सूरसागर पं० सं० ४६३५ पर भी
५. प्रभु गिरिधर (क.) नंदनँदन (ग. घ. ड. छ.),
६. वास (ग. घ. ड. छ.), ७. हाथ (घ), ८. रोष (ग)
•• 'ले चलि ऊधौ ! अपने देस' इस तुक से सूरसागर पद सं० ४४३७ पर भी
••• पहिलौ प्रेम० (ग० क०) से भी प्रारंभ

जद्दपि राजकाज मधुबन कौ गोकुल कबहुँ[1] सँभारिबौ।
कमलनयन बारक चित कीबौ बन गोधन कौ चारिबौ।।
हम ब्रज–लोक मया के मानिस इतनौ काज सँवारिबौ।
'परमानँद' प्रभु एक बार मिलि विपुल बिरह–दुख टारिबौ।।

१०८५ (सारंग)

बारक बदन दिखाइ कैं मोहन फिरि पाछैं नहिं हेर्‌यौ।
मनहुँ कियौ गोपाल पियारे ब्रज–जोगिन[2] कौ सौ फेरौ।।
उय लोचन चंचल कुंचित मानहुँ कमल मधुपनि है घेर्‌यौ।
ठाढे चतुर ठगे चतुरानन सर्वसु हरि लीनौ ब्रज केरौ।।
ऊधौ ! पाइ लागौं इहि कहियो तुम जु कहत हे[3] ब्रज है मेरौ।
'परमानंद' प्रभु अब कहाँ छाँडत अपने नंद–बबा कौ खेरौ।।

१०८८ (सोरठ)

ऊधौ ! इहि दुख छीन गई।
बालक–दसा नंदनंदन सौ बहुरि न भेंट भई।।
नयन–नयन सौं नयन मिलावै बयन–बयन सौ बात।
बहुरि अंग कौ संग न पायौ इहै क्रूर विधात।।
बहुरि कान्ह क्यों न गोकुल आए मधुबन हम न बुलाईं।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें दसमी अवस्था आई।।

१०८७ (सारंग)

दिन च्यारि आइबौ मन–भावन !
कहिबी मधुप ! स्यामसुंदर सौं अब लागी दुख पावन।।
कमलनयन की सुंदर लीला लागी गुपत बताबन।
जहाँ–तहाँ खेलत नँद–नंदन आनँद–प्रेम बढावन।।
कमलनयन दिन नांहिंन भूलत बिरह–ताप बिसरावन।
'परमानंददास' कौ ठाकुर मुरली मधुर बजावन।।

१०८८ (सारंग)

मेरे जीवनि श्रीगिरधारी।
राधा–रँबन कमलदल–लोचन बृंदावन–संचारी।।
जोग–मोट सिर–भार आनि कै कत तुम घोष उतारी।
इतनी दूरि जाउ चलि कासी जहाँ बिकै है प्यारी।।

---

१. बहुत (ङ. छ.), २. गोपनि (ङ छ.), ३. हौ (ग.)

इहाँ[1] मुकति कों कौन छुहत है जदपि पदारथ चारी।
'परमानंद' स्वामी मनमोहन दरसन की बलिहारी।।

१०८९ (सारंग)

वे बातें जमुना–तीर की।
कबहूँ सुरति करत हैं ऊधौ ! हरनि हमारे चीर की।।
लै सब बसन महा ऊँचे द्रुम रबकि चढनि बलबीर की।
हाथ जोरि कें आए[2] सबनि पैं दुहाई नंद–अहीर की।।
अंग दुराइ रही सरिता में खरी जुडाई नीर की।
'परमानंद' प्रभु चतुर-सिरोमनि जो जानै पर पर-पीर की।।•

१०९० (सारंग)

सोई दिन सालत हैं छाती।
अब ऊधौ ! ऐसी उन्हें उपजी पठवनि लागे पाती।।
तब हम कमलनयन–सँग रमती[3] सरद–चंद की राती।
स्यामसुँदर के हित की बींधी भवन छाँडि बन जाती।।
मरौं न जियौं विरह की जारी कंठ मूँठि लै काती।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें हम चातक–पिक–घाती।।

१०९१ (सारंग)

लिखि–लिखि पठवनि लागे जुहार।
ऐसी भई स्यामघन–सुंदर ! पतियनि सों ब्यौहार।।
तब वह कृपा प्रीति गोकुल सौं लेते सबै अभार।
गिरि उद्धरयौ इन्द्र–बलि मेटी
जब ब्रज परयौं हौ दुख भार।।
जानी बात बहुरि नहिं आवै गरग–बचन भयौ सार।
'परमानँद' प्रभु जे बिरही–जन तिनि कौ क्यों निस्तार।।

१०९२ (सारंग)

बहुत गुन मानोंगी हौं तेरौ।
अब की बेर मिलाइ गोपालै प्रान–जीवन–धन मेरौ।।

---

१. *महा (क. ग. घ. ङ. छ.)*
२. *आउ सब मो पैं (ङ. छ.), आइ वसन लै (घ)*
• *पद सं० ४५३२ पर सूरसागर में भी साधारण पाठ–भेद से*
३. *खेलति (छ)*

कठिन बिरह उपज्यौ उर–अंतर या कौ करिहि निबेरौ।
हस्त–कमल मेरे उर राखहु[1] अति सीतल सुख केरौ।।
एक बार लै आउ दगा दै करि उपकार घनेरौ।
'परमानंद' प्रभु बिरचि रहे सखि ! बाँधि बिरह कौ बेरौ।।

१०६३ (धनाश्री)

लरिकाई की प्रीति कहौ धौं अलि ! कैसै छूटत।
कहा करौं ब्रजनाथ–चरित्र अंतरगत लूटत।।
उह[2] चितवनि उह चालि मनोहर
उह कल बेनु मधुर धुनि गावनि।
उह नट–भेषु[3] स्यामसुंदर कौ उह लीला बन तैं ब्रज–आवनि।।
चरन–कमल की सपत करति हौं
इहि सँदेस मोहि विष भरि–लागत।
'परमानंद' प्रभु नाहिंन बिसरत
दिन अरु रयनि सोचत अरु जागत •।।

१०६४ (सारंग)

बातनि सब कोऊ समुझावै।
ऐसौ नाहिंन प्रीतमु कोऊ जो ब्रजनाथ मिलावै।।
आयौ दूत निकट कौ बासी औघर[4] ज्ञान बतावै।
जो हमारे हितु स्याम–मनोहर लोचन भरि न दिखावै।।
पहिली कथा पुरातन-मुनि-कृत कहि-कहि स्रवन सुनावै।
सो न कहै जो नंद–लडैतौ जन 'परमानँद' गावै••।।

१०६५ (धनाश्री)

गोपाल बटाउ की सी रीति।
जिहिं उपदेस सँदेस पठायौ उपर–मने की प्रीति।।

---

१. *राखहि (ग. ङ. छ.)*
२. *'उह' के स्थान मैं 'वह' सर्वत्र (ग. घ. ङ. छ)*
३. *वेष (क)*
• *लरिकाई को प्रेम' इस तुक से पद सं० ४६६४ पर सूरसागर में भी*
४. *निर्गुन (क)*
•• *पद सं० ३८०१ पर सूरसागर में भी*

केतिक बीच मथुरा गोकुल सौं निकट बसत परदेस।
एक दिवस मिलि जाहु मनोहर जाहु मनोहर ! मेटौ बिरह–कलेस।।
बाल–दसा कौ नाँतौ मानहु मोहन नंद–कुमार !
'परमानँद' स्वामी वह समुझहु जब गहते कुच–हार।।

१०६६ (धनाश्री)

• लोभ की प्रीति दिवस द्वै–चारि
स्वारथ तैं परमारथु नाँही इहि अपने मुख कही मुरारि।।
इहि उपदेस कह्यौ ऊधौ सौं केवल औधि[1] बिचारि।
सर्वात्मना भजन है मेरौ चिंतनु हृदय–मँझारि।।
तुम्हरें निकट हौं रहत सदाई देखौ दृष्टि पसारि।
'परमानँद' प्रभु इहि सब झूठी मूरति देखौं तुम्हारि[2]।।

१०६७ (सारंग)

मो तैं कछु सेवा न भई।
धोखें ही धोखें रही घोष–मँह[3] जाने नहीं त्रैलोक[4] मई।।
राम–कृष्ण सौं बिनती कीबी सब[5] अपराध क्षमा[6] कीबौ।
ऐसे भाग्य होंहिंगे कबहूँ बहुरि गोपाल गोद लीबौ।।
चरन–कमल गहि इतनी[7] कहिबी एक बेर दरसन दीबौ।
'परमानंद' स्वामी कृपाल चित इतनौ अनुग्रह अब कीबौ।।

१०६८ (धनाश्री)

मथुरा देखिबे की साध।
जहाँ निवासु कियौ नँद–नंदन जादव[8] बोध अगाध।।
सब गोपी मिलि बूझनि लागीं उद्धव[9] हरि के दास।
एक बेर गोविंद[10] मिलावहु[11] सुँदर मोहनहास।।
लोचन सजल–प्रेम–पुलकित तनु ऊभी[12] लेति उसास।
बढ्यौ दुसह बिरह कहा कीजै सुनि 'परमानँददास'।।

• लोभी प्रीति (०) से भी प्रारम्भ
१. औधि मन–माँहि (ङ. छ.) २. तिहारि (घ)
३. में (क. ग. घ. ङ), ४. त्रैलोक्य (ग. ङ. छ.) ५. अब (ङ)
६. छमा (क. ग. घ. ङ. छ.), ७. बिनती (घ.)
८. जादौ (ग. घ. ङ छ.), ९. ऊधौ (ग. घ. ङ .)
१०. गोपाल (ग. छ.), ११. मिलावौ (छ.), १२. ऊरध (छ.)

१०६६ (धनाश्री)

बहुत दिन बीते नंदकुमार !
बिनु देखे वह मोहन–मूरति हरि–लीला–अवतार।।
अवधि-बचनु दै गमन कियौ हौ सो न परौ अब पार।
बिरहातुर व्याकुल ब्रज–नारी नाहिंन आनि अधार।।
इहि कहिबौ जोदौपति–आगें चितन साँझ–सवार।
परमानन्द प्रभु मिलहु कृपाकरि प्रकट हरन भू भार।।

११०० (आसावरी)

जैंसी तुमऽब कहत[२] तैसी कौन मानै।
स्याम–सुरूप कमलदल–लोचन जो वा संग करै सो जानै।।
साँचौ ग्यान–ध्यान साँचौ पुनि साँचौ इहि उपदेस।
इहि अध्यातम–मत जोगिन कौ गोपी–जन के हृदै प्रवेस।।
जिहि मिलि खेल्यौ कंठ बाहु धरि कालिंदी के कूल।
तिनि के हृदै अवर[३] क्यों आवै इहि देखे पद–मूल।।
हम सौं हरि सौं काम–सगाई इहि कीनी जगदीस।
'परमानँद' प्रभु आनि मिलावहु जनम जातु है खीस।।

११०१ (मारू)

मधुकर ! छुहौ जिनि चरन हमारे।
तहाँ[४] जाहु माधौ के प्यारे।।
काहू सखी देखि एक[५] मधुकर तुम्ह[६] जु इहाँ क्यों आए ?
चंचल जाति भाँति उनही की मुख कुमकुम लपटाए।
गावहु तहाँ जहाँ कछु पावत[७]
हो विजय[८]–सखा ! सखि आगें।
हम तौ दीन[९] दुखित बैरागिनि दैं कहा हम माँगें।।
अधर–सुधा–रस–सकृत पान करि बिहंग भए जोगी।
'परामानंददास' क्यों जीवहि जे गोपाल–बियोगी।।

---

१. भूतल (ङ. छ.) भुव (ङ.) २ कहत हौ (ग. घ. ङ.) कहौ (छ.)
३. और (ध. छ.), ४. जहाँ (ग.), ५. इक (ङ. च.)
६. तुम धौं (घ.) हम लों (ग.)
७. पावहु (ग. घ. ङ. छ.)
८. दुःख (ग. घ. ङ. छ.)

११०२ (सारंग)

• दिवस दस रहि चलिये हरिदास !
बहुरि गोबिंद[1]–कथा कहाँ सुनिबी बैठि कौन के पास।।
ऐते दिवस हम जात न जाने संतत[2] संगति–बास।
एक दिवस कहँ आए ऊधौ ! कृपा करी षट मास।।
पूरब[3]–कथा सँभारनि लागी ठाढी लै–लै स्वास।
'परमानँद' प्रभु कबहु[4] देखिबे जगत–विमोहन हास।।

११०३ (सारंग)

मोहन–मुख देखें सुख–जीजै।
जो पै राम–कृष्ण नाँही ज्ञान कहा लै कीजै।।
औषध आन–रोग आनै कछु इहि झूठौ उपचार।
परमानँद' स्वामी के बिछुरें सब[5] चाँप्यौ दुख–भार।।

११०४ (सारंग)

ऊधौ ! कवन बैरु चातक–पिक हम सौं जिनि[6] ठाने।
नंदनँदन प्राननाथ दूरि गए जाने।।
रितु बसंत बिनु अनंत काहे कौं आई।
दुख–मँह[9] दुख को[8]ऽब सहै बरषा नियराई।।
सरद–निसा चक्रवाक बोलि–बोलि रोवै।
सहि न सकै[6] प्रान हमारौ हियरा[10] जरावै।।
धरनी–पेय[11] गगन–मेह मंद–मंद गरजै।
'परमानंद' स्वामी गोपाल इन्ह कौं कोउ[12] बरजै।।

• *दिन दस (क. ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारम्भ*
१. *गोपाल (क. ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारम्भ*
२. *सत–संगत की आस (ग. घ. ङ. छ.)*
३. *ठाढी गोपी पंथ निहारति ऊरध लेति उस. स (क. ग. घ. ङ. छ.)*
४. *कबरी (क. ग. घ. ठ. छ.)*
५. *ब्रज (ग. घ. ङ. छ.),* ६. *जिय आनें (ङ.)*
७. *में (ग.),* ८. *कौन (ग. घ. छ.)*
९. *सकत (घ),* १०. *जियरौ (घ)*
११. *पय (ग. ज.),* १२. *को (ग. घ. ङ. छ.)*

११०५ (सोरठ)

मेरौ मन हर्‌यो री ! नागरु।
कैसैऽब जीवहिं चरन बिनु देखें
जानति करम उजागरु।।
अवधि–वचन कहि गहरु लगायौ कृपा–प्रेम के सागरु।
मिलन–पियास[1]–स्याम–जल मधुबन
अब गोकुल भयौ बागरु।।
कैसै मन पतियातु सँदेसनि लिखि–लिखि पठवत कागरु।
'परमानंद' बिरहिनी कौ दुख बिनु प्रीतम दिन आगरु।।

११०६ (सारंग)

ऊधौ ! जाइ जाइ कहौ दूरि करै दासी।
इहि बिचारि ब्रज की नारि करत हैं सब हाँसी।।
हंस–काग खल–कपूर काच–कंचन ऐसौ।
कुबिजा अरु कमलनयन संग बन्यौ तैसौ।।
जाति–हीन कुल–बिहीन कान्ह–कुँवरि दोऊ।
जो जैसौ सँग करै तैसौ होइ सोऊ।।
गोपिनि के बचन सुनत गदगद भई बानी।
'परमानंद' बिरह–पीर बेदौ नहिं जानी •।।

११०७ (सारंग)

ऊधौ ! बिनु जीवन क्यों जीवहिं।
तिरोधान रबि मधुबन आए नयन–द्वार कहा पीवहिं।।
मम बियोग दुःखिनी गोपिका अनुदिन सूकनि लागी।।
इहि अक्रूर निदाघ भयौ तब उझि कमलिनि अनुरागी।।
मेरे कृपा पंक ओई कूर अवधि–आस मन राख्यौ।
हृदै कुराइ दास–'परमानंद' प्रभुसेवक–प्रति भाख्यौ।।

११०८ (कानरौ)

अब राज पायौ मथुरा कौ मोहन।
परजा–लोक की कौन चलावै बिसरि गयौ गो–दोहन।।

---

१. प्यास (क. ग. घ. ङ. छ.)
• पद सं० ४२७१ पर सूरसागर में भी

लोचन सजल कहति उद्धव[1]–प्रति पूरब –प्रीति सँभारति।
दुर्लभ मिलन कियौ नँदनंदन बढी बिरह की आरति।।
मंद भाग हम मरमु न जान्यौ परब्रह्म ब्रज–माँही।
'परमानंददास' कहा कीजै सोचत ए दिन जाँही।।

११०६ **(कानरौ)**

काहे कौं बिछुरि रहे करुना–मुरारि ?
तुम्हरौ कमल-बदन बिनु देखें निमिष-निमिष बितवति जुग चारि।।
बसुदेव[2] के ढोटा सौं कहियहु अपनी ठगौरी लेहु उतारि।
तुम्हरे चेटकु सब जग मोह्यो बिरहिनि गए मदन–सर मारि।।
उह चितवनि उह चालि मनोहर ते सब गावति ब्रज की नारि।
'परमानंद' प्रभु हमरें[3] सब सुख लै लै दीने कुबिजा टारि[4]।।

१११० **(कानरौ)**

गोविंद गोकुल की जीवनि।
वे बातें अब क्यों बिसरति है दूध–पतूखी पीवनि।।
देखौ ऊधौ ! दसा हमारी जोग–ध्यान को[5] लेखैं।
अंतरगत की बानि बिचारहु[6] जीवति गोपालहिं देखैं।।
जिहि मधुकर अंबुज–रस चाख्यौ क्यों करीर–रति मानैं।
ताकी साखि 'दास परमानंद' बिरह बिथा सब जानैं।।

१११११ **(मलार)**

हमारे कोतैं चरनै हाथ घालिबौ।
ता पाछैं बिनती करि ऊधौ ! इहि प्रसंग चालिबौ।।
एक बार पहिलौ सौ मन करि अपनौं गोकुल पालिबौ।
नंद–जसोदा नाँहि[7] बिसारत कान्ह ! तुम्हारौ लालिबौ।।
इहि ब्रज–दसा देखि गमनत हौ बिरहानल कौ जालिबौ।
'परमानंद' स्वामी सों कहियहु कब लगि इहि तन गालिबौ।।

---

१. ऊधौ (ग. ङ. छ.)
२. वसुद्यौ
३. हमारे,
४. ढारि
५. कहँ (घ)
६. बिचारौ (ग. ङ. छ) बिचारी (छ)
७. नाहिंन बिसरत (ग. घ. ङ. छ.)

१११२ **(सोरठ)**

मथुरा रमि रह्यौ नँद–नंदनु।
अब काहे कौं गोकुल आवै जादव[1]–कुल–पद–बंदनु।।
उह[2] औसर तब ही बीत्यौ जब पूतना–निकंदनु।
मुरली–नाद स्रवन सुनि ऊधौ ! मन करतौ अस्पंदनु।।
ता की महत बडाई आदरु जिहि दीनौं तब चंदनु।
'परमानंद' स्वामी कत आवहिं बँधे काम के फंदनु।।

१११३ **(मलार)**

किते दिन गए ऊधौ ! बिनु हरि–दरसनु।
जब तैं हरि मधुपुरी सिधारे
क्यों पईयतु चरननि कौ स्परसनु।।
जहाँ नृप–जूथ रहत दरबारें ठाढे मुकुट छीजि पाँ लागत।
ब्रज–बासिनि की कौनु चलावै
ब्रह्मादिक प्रसादु जहाँ माँगत।।
कृपनपालु है बिनोद कान्ह को[3]
एहि मानि जो आपने[4] जानै।
स्याम–किसोर[5] जसोदा लालै नंद–गोप कौ नातौ मानै।
जब–जब सुरति संग की आवै
लोचन भरि भरि लेत उसास।
मन–क्रमबचन आनि गति नाहिं
गोपी–जन 'परमानंददास'।।

१११४ **(सोरठ)**

मधुकर ! खेद करै कत कोई ?
टूटी प्रीति जो बहुरि जोरिये तौ गाँठि–गठीली होई।।
गनिका सुखी भई आसा तजि रही सवारे सोई।
हमारी आस जाति नहिं अजहूँ सरबसु बैठी खोई।।

---

१. जादौ (ग. घ. ङ. छ.)
२. वह (ग. घ. ङ. छ.)
३. के इहि (ङ. छ.)
४. आपुनौ (क.) प्रात समै (छ.) अपने (छ.)
५. मनोहर (ङ. छ)

जब-जब सुरति करति वह लीला तब आवत है रोई।
परी जु कठिन ठगौरी माथें मनौ रही बिष–भोई।।
हरि कृपाल करुना के सागर आवहिंगे ब्रजवास।
'परमानंद' प्रभु बहुरि मिलहिंगे पूजैगी[1] मन की आस।।

१११५ **(सोरठ)**

ऊधौ ! हौं दूबरी बियोग।
प्रीतम हुते सु[2] चले मधुपुरी रहे बटाऊ लोग।।
जो जानत नहिं बिथा हमारी कहै बनें तुम आगे।
देह–सिंगार बिहार नहिं भावत मन तरसत हरि[3] लागे।।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें वा[4] गति भई हमारी।
प्रान रहत आवनि की आसा बेगि न मिलहु[5] मुरारी।।

१११६ **(सारंग)**

• ऊधौ ! कमल–नयन कब आवै ?
ग्वालनि–सँग गोधन के पाछैं गोपिनु[6] प्रेम बढावै।।
मोर–चंद्रिका माथें सोहै महुबरि बेनपु बजावै।
गोरज गुंजा–धातु बनी अँग कोटिक[7] दुख बिसरावै।।
कान्ह–किसोर कुँवर कमलापति सुंदर अंग सुहावै।
'परमानंद' कहै रसिक–राधिका ऐसें क्यों[8] बिसरावै।।

१११७ **(सोरठी)**

• ऊधौ ! बेदन का सों कहिये ?
हमारे अभाग्य अक्रूर विधाता हरिहिं दोस कैसै दइयें[9]।।
उदवस–नगर देव–जैसें देखियत सोई गति भई हमारी।
तन–मन–प्रान–नयन की सोभा हरि लै गए मुरारी।।
कबहु ऐसे भाग्य होंहिगे हरि आवैं गोकुल बहोरी।
हम अहीर ओय त्रिभुवन नायक काग–हंस कैसी जोरी ?
कबहु ऐसे दान–पुन्य किये रमानाथ घर आवै।
'परमानंद' प्रभु[10] सौं नागरि छिनु–छिनु प्रेम[11] बढावै।।

---

१. पूजै (ग. घ. ङ. छ.), २. सो चलि गए (ग. घ. ङ. छ), ३. ताहि (ङ छ.)
४. इहि (ङ. छ.), ५. मिलौ (ग. घ.)
• ऊधौ जू ! (क. छ.), ऊधौ जी ! (ग.) से भी प्रारम्भ
६. गोपिनि (ङ), ७. दरसन (ग), ८. को बिरमावै (क.ग.ङ.छ.) विरह (घ)
९. दीजै (ख), १०. स्वामी, ११. प्रीति (ग. ङ. छ.)

११११८ (भैरव)

बहुत दिवस भए देखे बिनु लाल।
मधुवन तें कोऊ नहिं आयौ।
अवधि अधिक गई मदनगोपाल।।
कहियो पथिक ! अवस्था मेरी
एक ग्वालिनि दियौ है सँदेस।
'परमानंद' प्रभु ए[1] ही न बूझिये
इतनिहि दूरि कियौ परदेस।।

११११९ (सारंग)

ऊधौ ! सुनि–सुनि आवत हाँसी।
कहाँ वे ब्रह्मादिक कौ ठाकुर कहाँ कंस की दासी।।
इन्द्रादिक की कौन चलावै संकर करत खवासी।
निगमादि[2] बंदीजन जा के चक्र–कोस के बासी।।
कमला जा के चरन पलौटै[3] कौन गनें कुबिजा सी।
'परमानंद' प्रभु दृढ करि बाँधे प्रेम–भगति की पासी।।

११२० (सारंग)

कहा रस बरियाई की प्रीति।
जब लगु अंतर गडै न ऊधौ भुस ऊपर की भीति।।
नयन बयन सों[4] हृदौ मिलत है उपजत प्रेम–प्रतीति।
दोउ हँसि मिले मानौं सनमुख मान[5] लियो मानों जीति।।
एक विचार सुनौ[6] धौं ऊधौ ! ब्रज में कैसी रीति।
'परमानंद' जन सोउ जानें जा मँहि[7] गई होइ बीति।।•

११२१ (आसावरी)

रहै रहे रे ! जान्यौ ग्यान तिहारौ।
जानै कहा राज–गृह[8] लीला वे अहीर विचारौ।।

---

१. ऐसी (छ.) इहि (ग.)
२. निगमादिक (घ) ३. पलैटै (ङ. छ.)
४. जो (ख) ५. मानो मनु लियो (ख.)
६. सुनु हो (ख) ७. में (ग. ङ. छ.)
• पद सं० ४५२३ पर सूरसागर में भी पाठ–भेद से
८. घर (घ)

(ऊधौ) एक भली हम सबै अयानी कुबरी सौं मन मान्यौं।
सुनि री सखी ! वे लाज धरत हैं आवत नाहिं खिसान्यौं।।
लै आवहु हम कछु न कहेंगी मिलवहु प्रान–पियारौ।
जीवहु लाख करहु दस कुबरी अंतहि स्याम हमारौ।।
सुनि री ! सखी जिनि बात चलावहु माधौ आवनि दीजै।
'परमानंद' प्रभु आइ मिलें तो हाँसी करिकें[1] जीजै।।

११२२ (सारंग)

गोपालहिं लै आवहु मनाइ।
एक बार कैसें करि ऊधौ छल–बल करि गहि पाँइ।।
उनहिं उसारि उराहनु दीजहु संधि–संधि समुझाइ।
जिनहिं छाँडि बटियाँ मँह आए कैसी भई ब्रजराइ।।
तुम सौं[2] कहा कहौं हो मधुकर ! बिनती बहुत बनाइ।
बाँह पकरि 'परमानंद' प्रभु की नंद की सौंह दिवाइ•।।

११२३ (सारंग)

•• अब ब्रजनाथ कछू करौ।
जा कारन इह देह धरी है ताहि[3] के लेखें परौ।
प्रथम हीं हम सरबसु लै अरप्यौ ता[4] ही के बिरह जरौ।
कोटि मुगति वारौं मुसकनि पर जोग बापुरौ को सरौ।।
सगुन जु बाँट परयौ गोपिनि कें निगुन तिहारौ औसरौ
ता की छठी छार 'परमानंद' जो ब्रत जानै दोसरौ।।

११२४ (सारंग)

गोबिंद गोकुल की सुधि कीबी।
पहिले हु नाँते स्याम–मनोहर इतनिक पाती दीबी।।
गाउँ तुम्हारौ देस तुम्हारौ भूमि तुम्हारी देवा।
चूक परी अपराध हमारौ नाथ न कीनी सेवा।।
चंदन भील–पुलिंदनि के घर ईंधन करि ताहि मानें।
'परमानँद' प्रभु जो जहाँ सो तहाँ जो न महातमु जानें।।

---

१. करि–करि (घ)
२. अब हौं कहा–कहों हो ! तुम सों (ग. ङ. छ.)
• साधारण पाठभेद से पद सं. ४३६३ पर सूरसागर में भी
•• आली अब० (ग. ङ. छ.) से भी प्रारंभ
३. ताही (ग. ङ. छ.), ४. वाहौ (ङ. छ.)

११२५ (केदारौ)

करि सनेह दै गए बियोग।
दावा–अनल दहै तन आली !
वैद न जानें अपर–बल–रोग।।
नैननि नीर बहै निसि–बासर कंचुकी भई निचोरन–जोग।
'परमानंद' प्रभू सौं कहियो अंतर भयौ मधुवन के लोग।।

११२६ (सारंग)

कमल–नयन मधुवन पढि आए ऊधौ ! गोपिनि पास पठाए।
ब्रज–जन जीवति हैं किहिं लागी रहती संग सदा अनुरागी
उनके उर को दाह मिटाबौ निर्गुन ब्रह्म–समाधि लगावौ
तन–मन प्रेम–समाधि लगावें। उर–अंतर जैसें सचु पावें
सजन–बियोग बिधाता दीनौ। एक नगरी औतार न लीनौ
अरु[1] कहियो हमरी कुसलाता। बूझेंगी दिन–दिन की बाता
अरु कहियो तुमतें नहिं दूरी। जोति–सरूप रहें भरिपूरी
अरु कहियो कथा समुझाई।
बिछुरन–मिलन रच्यौ जदुराई।।
तुमसों बहुत कहा समुझाउँ। तुमसौ सखा विचित्र न पाऊँ
आयुस लै ब्रज कों पाउँ धारे। कमलनयन के हेत बिचारे
जब रथ दृष्टि पर्‌यौ ब्रजवाला। कुंडल मुकुट और बनमाला।
स्याम सरीर पीत उपरेंना मनमोहन वेई कर बेंना।।
सबै सखी एकतभईं निरखत स्याम–सरीर।
आए चित के चोरनाँ कहाँ रहे[2] बलवीर।।
ज्यौं नलिनी पूरन समैं बाढी उदधि–तरंग।
निरखति चंद–चकोर ज्यौं बिसरि गई सब अंग।।
फूली आवति देखि कैं 'परमानंद; प्रभु है सही।
बचन कियौ प्रतिपालना कमलनयन बिछुरत कही।।
गोपी पद–अंबुज परसनि आईं। ए तो होहिं न कुँवर कन्हाई
ए कोइ हैं उनके अगवानी । ऊधौ देखत ही मुरझानी

---

१. वारुक (छ.), २. गए (ग.)

ऊधौ मुख बोलन हूँ न पाए।
जोग–जुगति–मति सिखै पठाए।
एक बेर अक्रूर जु आए। प्रान–जीवनि कौं लेत सिधाए
इहि अपराधी अजुगति कीनौ।
हरि कौं गवन मधुवन कौं दीनौ।
मुख अति मधुर मैल मन माँही।
हृदै कठोर दया जिय नाँही।।
ऊधौ जू ! जबरी चले ब्रजनाथा।
नंद पिता ब्रज–बालक–साथा।
हम हीं चलिबे कौं घेरि कैं आई।
फिरि चितए कछु सैन बुझाई।।
ता दिन तें सपने नहिं देखे ! नैननि मोर–चंद जिमि रेखे
नख–सिख लौं देखनि नहिं पाए।
ए दोऊ नैन सजल भरि आए।।
अहि–मनि माथे तैं हरि लीनी।
हम ब्रजनाथ अनाथ जु कीनी।
हम तौ तन–मन हरिसौं सान्यौ[1]। ज्यौं मधुकर मधु लेत उडानो
इक चातक पिक रटति तिसारी।
पिउ–पिउ करि अधरात पुकारी।
रजनि भई इक नागिनि कारी । है कोउ लेहि जु प्रान उबारी
इक–अंगी सौं प्रीति न कीजै।
ज्यों जल–मीन तलफि तनु छीजै।।
मीन मरै जल ना मरै जल–बिन मीन मरंत।
मीन किये है नीर कौं जल के जीव अनंत।।
तुम जानौ सबकी गतिहिं मोहन के मन मांहि।
नैंन निमेष न बीसरै सपने हू सचु नांहि।।
मृगी स्याम कुरंग बिनु जीवति लेहि उसास।
'परमानंद' प्रभु बिन मिलें कैसें जीवन आस।।
रे षटपद! उर अंतर कारे। तुम जिनि परसहु चरन हमारे
तुम्हरे पीत बरन मुख केसा। मधुवन जाइ करहु उपदेसा।

---

१. *मान्यों (छ)*

बिजै–सखा–सखियनि मिलि गावौ।
दंपति मिलि आनंद बढावौ।
किंचक अधर–सुधा–रस दीनौ।
मेलि ठगौरी मनु हर लीनौ
ऊधौ ! पढि–पढि भए अब ज्ञानी।
नीति–अनीति सबै पहिचानी।
निर्गुन–ज्ञान तब हि तुम कहते।
सत–संजम ब्रत दृढ करि गहते।।
नैननि तैं सरिता कत बहती।
हरि–बिछुरन की सूल न सहती।
ऊधौ जू ! मृतक मारन आए। सूर–सुभट अबलनि पर धाए
अबै क्रिया करि जाहु हमारी। तुम्हंरौ गुन मानें बनबारी
ऊधौ ! भाग हमारे आए। स्याम सखा हित जानि पठाए
अब हरि हम मिलिबे की आसा। जीवत-मृतक ज्यौं लेहिं उसासा।
जीव–दया बधिक कहा पारे। हम तौ डसी भुवंगम कारे
ऊधौ हम से होहुगे जानोगे बिनु ही कही।
हरि–बिछुरन की सूल है तिरछी हिरदे में बही।।
'परमानंद' प्रभु कारनें जरि भई देह की खेह।
उलटि विधाता जो रचै नँदनंदन सौं नेह।।
अब कछु कहिबे की नहिं बाता। बिरहिनि पीर लहै कोउ ज्ञाता।
तब ऊधौ बोले मधु बानी। धन्य ब्रज नंद–जसोमति रानी
धन्य सु गोप गोकुल की नारी। चरनकमल–रजदेबनि वारी
तुम सी तुम ही होहु सयानी। लोक-बेद-कुल-अटक न मानी
ता तें तुम हम निज गुरु जानी। तुम्हरी प्रीति रटैं मुनि–ज्ञानी।
तुम्हरी प्रीति बिरंचि उपासा। नाना रिषि गावैं मुनि व्यासा
कुरुपुर मिलिहैं नंदकुमारा। तुम्हरी जीवनि प्रान अधारा
जाइ कहौं नंदनंदन आगैं। गोपी आन प्रबोध न लागैं
देह–दसा बिसरी मोहि नाथा। गावत सुनि तुम्हरे गुनगाथा
कहौं कहा जैसी मैं देखी। रसना कोटि बिंरचि बिसेखी
तुम्हरे चरनकमल बिनु देखें। जीवन जनम गनत नहिं लेखें
जो रस सिव–सनकादि न पावै। गोपी मगन भईं जसु गावै

सोवति सुमिरें स्याम कौं जागति लेहिं उसास।
निसिदिन मगु जोवति रहैं सदा मिलन की प्यास।।
सरिता सौ बिनती करैं उडुपति सौं अनुराग।
प्रेम–भगति–घट भरि लई कहाँ धरैं[1] वैराग।।
सुर–नर–मुनि खोजत फिरें केवल ब्रह्म कौ ज्ञान।
परमानन्द प्रभु बिनु मिलैं गोपी अनल समान।।

११२७ (विलावल)

कबहूँ सुमिरत हैं वे बतियाँ।
बेनु बजाइ रास–रस–कारन बन बोली अधरतियाँ।।
एक द्यौस सँग क्रीडा करत हीं घन बरख्यौ बहु भतियाँ।
अपनौ पीतांबर मोहि उढायो अरु लै लाई छतियाँ।।
जेई–जेई चोंप करति चित–अंतर
सोइ पुरबत बिधि मतियाँ।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें बिरह मदन–सर छतियाँ।।

११२८ (सारंग)

ऊधौ ! कछु नाँहिन परत कही ।
जबतैं हरि मधुपुरी सिधारे बहुतै बिथा सही।।
बासर कलप भये अब मोकौं रैनि न परत गही।
सुमिरि–सुमिरि इहि सुरति स्याम की बिरहा बहुत दही।।
निकसत प्रान अटक में राखे अबध्यौ जानि रही।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें नैंननि नदी बही।।

११२९ (सारंग)

बिरचि मन बहुरि न राचत आहि।
टूट्यौ जुरै बहुत जतननि पै ऐंच्यो तऊ न जाहि।।
फाट्यौ दूध भयो जब काँजी कहा स्वाद दिखराइ।
कपट कौ हेतु प्रीति ऐसी ज्यौं बोथि चुखाई गाइ।।
स्वाति–बूँद जो[2] परै फनग–मुख अचवत विष ह्वै जाई।
केरा पास जु बेरि लगाई छिनु–छिनु परसि चिराइ।।

---

१. धरों (ग. ज.), २. ज्यों (ग. घ.)

ऊधौ ! हम हेत कियौ हरि जल सों मीनहीं बूझौ जाइ।
'परमानंद' दिगंबरपुर में रजक कहा ब्योसाइ •।।

११३० (सारंग)

मधुप ! काहे कौं बार–बार और कथा कहत।
हरि की परतीति गए नाँहिन कछु रहत।।
तेज वायु अरु अकास पिरथी अरु पान्यों।
तिनमें तें नंदनंदन कहाँ घालि सान्यों।।
कमलनयन स्यामसुंदर देखत जिय भावै।
ता कौं तू गुपति करै औरें कछु गावै।।
'परमानंद' स्वामी गोपाल लीला–तनु लीनौ।
निर्गुन तें सगुन भए संतनि सुख दीनौं।।

११३१ (गौरी)

कैसें धौं कमलनयन बिनु रहिये ?
निसि–बासर औसेर घनेरी दुसह बिरह क्यौं सहिये।।
ज्यौं ऊजर[1] खेरे की मूरति को पूजै को मानैं।
त्यौं भईं बिनु गोपाल हम ऊधौ ! कठिन बिपति को जानैं।।
हमरौ तन–मन चरनकमल मँह[2] हरि मिलिवे की आसा।
'परमानंद' बिकल–मन गोपी लोचन–भृंग पियासा।।

११३२ (सारंग)

केते ही दिन होइ गए ऊधौ ! चरनकमल–विमुख हीन।
विमुख हीन दूखत तिल–तिल विलपत दरस–हीन।।
रजनी अति प्रेम–पीर सूनेघर मन न धरै धीर।
निसि–बासर मग जोवति और सरिता बहै नैननि नीर।।
जब लगि हरि अवधि आस घटिका गनत रहै साँस।
बिरहिनी अति व्याकुल लखि प्रभु मिलैं 'परमानंददास'।।

११३३ (सारंग)

मधुकर ! स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियौ तनक चितवनि में चपल नयन की कोर।।

• पद सं० ४५७५ पर सूरसागर में भी पाठ–भेद तुक परिवर्तन से
१. उजरे, २ में (ग. छ)

पकरे हुते हृदै उर–अंतर प्रेम–प्रीति के जोर।
गए छिडाइ तोरि सब बंधन दै गए हँसनि अँकोर।।
कहा करौं कित जाउँ सखी री ! चित न रहत है ठौर।
'परमानंद' प्रभु सरबसु लूटे लै गए नँदकिसोर•।।

११३४ (सारंग)

हम बनचारी कैसै बने सगाई।
जो घुँघची सोने–सँग तोली इतनीये बहुत बडाई।।
अब वह सुरति जबहि आवति है वृंदावन–द्रुमराजी।
जमुना पुलिन समीर सुसीतल रास–केलि तब साजी।।
परम प्रीति गोपिनि की नैंन रहे अरुझाई।
बिनु गोपाल गोकुल के बासी निमिष कल्प–सम जाई।।
मोहन परदेस रह्यो इहाँ रहे सूत
समाधान करिबे कों पठये दूत।
अब लौं ए प्रान रहे आवन की आसा
एते दिन अवधि गए बीते ब्रज–वासा।।
नैननि है घट्यौ नीर मुख न घटे साँसा
झंखत तन रूप घट्यौ 'परमानंददासा'।।

११३५ (मलार)

माई ! हरि प्रीतमु परदेस।
छायौ नाथ द्वारका–नगरी कव[1] नहिं दियौ सँदेस।।
सोच–समुद्र पस्यौ मनु[2] मेरौ कहाँ[3]'कहाँ मैं[4] लाउँ।
देखि–देखि वृंदावन जमुना अकेली खरी डराउँ।।
जा बिनु एक घरी नहिं रहती बीतनि लागे मास।
कष्टनु प्रान धरति 'परमानंद' बहुरि मिलन की आस।।

११३६ (सारंग)

सराहत राधिका की बात।
सुरति जु करी[5] बाल–दसा की लोचन जल न समात।।
मृगमद–तिलक सरद–बिधु[6] बदनी कनक–लता समगात।
जमुना–तीरु संग मिलि खेलत दिवस[7] न जाने[8] जात।।

• *कुछ परिवर्तन से पद सं० ४३५२ पर सूरसागर में भी*
१. कबहुँ न दियो (ग. ङ. छ.), २. मेरौ जिय (घ.)
३. कहौ कहाँ ४. हौं (ग), ५. करि–करि ६. ससि ७. द्यौस ८.जान्यों

मम मद–मगन रहति मदमाती गनति न जननी–तात।
'परमानंद' सुमिरि वे बातें नंदनँदन पछितात।।

११३७ (सारंग)

ऐसौई रथ ऐसौई सब साजु।
बहुर्‌यौ कछु बिचारि मतौ कियौ
सुफलक–सुत आए ब्रज आजु।।
प्रथमहिं गमन गए लै हरि कौं
परम सुमति रचि राख्यौ राजु।
अब धौं कहा कियौ चाहत हैं
या तें अधिक कंस कौ काजु।।
व्याध जु मृगनि बधत सुनि सजनी !
सो सर काढें संतनु लेत।
या अक्रूर कठिन कीनौं है
पै नाँहिन आजु इतौ दुख देत।।
ऐसेई बचन बहुत बिधि कहि–कहि
लोचन भरि सींचत तन गात।
'परमानंद' प्रभु अवधि–आस–लगि
मिलि बूझनि लागीं कुसलात •।।

यशोदा–नंदजू के वचन

११३८ (मारू)

कहियो जसोदा की असीस।
जहीं रहहु तहाँ लाड लडहु मेरे जीवहु कोटि बरीस।।
नंद जु दई दोहनी घीउ[२] भरि ऊधव[३] धरि लई सीस।
कहियो इहि तुम्हारी[४] धौरी कौ न्यारौ है जगदीस।।
ऊधौ चलत सबै मिलि आए गोपी ग्वाल दस बीस।
ब्रज–बासिनि की बिनती कहिबी[५] 'परमानंद' के ईस।।••

• *सूरसागर पद सं० ३४७८ पर भी वैसोई रथ वैसोई'*
१ जहाँ रहौ (ङ. छ.) २. घी की (घ. छ) घिउ की (ङ)
३. ऊधौ (घ. छ.) उद्धव (ङ.) ४. तिहारी (घ.), ५. कीबी (ग. घ. ङ. छ)
•• *कुछ परिवर्तन से पद सं० ४७०८ पर सूरसागर में भी*

११३६ (धनाश्री)

अपनी गरीबी नंद सुनावै।
एक बार बसुदेव कौ ढोटा बहुरि हमारें आवै।।
जद्यपि चूक परी अनजानत कहा अबकें पछिताने।
बासुदेव गृह–भीतर आए हम ग्वालनु करि जाने।।
जद्यपि गरगु कह्यौ अबिनासी संग–दोष तें भूले।
'परमानंद' स्वामी के मिलन कहँ[1] राति-दिवस उर सूले।।

११४० (सारंग)

अब सब चाहन लागे।
जो गोविंद गए गोकुल तजि तौ सोवत तें जागे।।
बैरु परस्पर उपज्यो है बन बाघ गाइ कौं मारत।
घर–घर तें बछरा वृक काटत सब प्रानी अति आरत।।
कहत नंद ऊधौ के आगे नैन नीर भरि आवत।
मंद–भाग हम ब्रज के बासी कृष्ण–बिना दुख पावत।।
निकट बसत मति-हीन भए हम पुत्र-मित्र करि मान्यौ।।
'परमानंद' स्वामी गोपाल कौ गएँ महातमु जान्यौ।।

उद्धव–वचन–प्रभु–प्रति–

११४१ (सारंग)

ऐसी मैं देखी ब्रज की बात।
तुम बिनु कान्ह कमल–दल–लोचन !
जैसें दूलह–बाजु बरात।।
ओई[2] मोर कोकिला ओई ओई पपीहा हे बन बोलत।
ओई ग्वाल गोपिका ओई ओई गोधन कानन डोलत।।
है सब संपति नंद–गोप कें[3] तुम्हारे प्रसाद रमा के नाथ !
'परमानँद' प्रभु एक बार मिलहु
पतियाँ लिखि दीनी मेरे हाथ।।

---

१. कों (ग. ङ. छ.)
२. (सर्वत्र) वेई (क. ग. ङ. छ.),
३. कों (ग. ङ छ.)

११४२ (बिहागरौ)

व्रज के विरही लोग विचारे।
बिनु गोपाल ठगे से ठाढे अति दुर्बल तन हारे।।
प्रात जसोदा पंथ निहारति निरखति साँझ–सकारे।
जो कोउ कान्ह–कान्ह कहि टेरत अँखियनि बहत पनारे।।
यह मथुरा काजर की रेखा जोई निकसत सोइ कारे।
'परमानँद' स्वामी बिनु ऐसे जैसे चंद–बिनु तारे•।।

११४३ (गौरी)

नंद निहोरौ बहुत कियौ।
सुनहु स्रवन दैं स्याम–मनोहर ! मुख संदेस दियौ।।
एक बार मुख-कमल दिखावहु हित करि गोकुल आबहु।
जननी–तात को नाँतौ मानौं सो काहे बिसराबहु।।
ऊधौ–बचन सुने जब श्रीपति लागे लैन उसास।
फिरि प्रति–उत्तर बहुरि न दीनौं हित 'परमानँददास'।।

25. जरासंध युद्ध–प्रसंग

११४४ (विलावल)

आजु रन जीत्यो है गोविंद।
जरासंध कौ सैन सँघास्यो बृंदावन के चंद।।
दिव्य–लोक तैं दोउ रथ आए आयुध–तुरी–समेत।
कहत गोपाल सुनहु संकरषन ! आजु मारिहों खेत।।
मथुरा मंगल गावनि लागे सब कोउ करत अनंद।
कुसुम देवता बरसनि लागे नाचे 'परमानंद'।।

26. द्वारका–लीला

द्वारका–निवास–

११४५ (सारंग)

स्यंदन बैठि चलत जिहिं मारग नर–नारी कौ मनु मोहै।
आछी दृष्टि परी मुख–अंबुज
तृपति न आवै[1] सब अँग सोहै।।

• *अष्टछाप–वार्ता विद्याविभाग–प्रकाशन*
१. पावै (ग. ङ. छ.),

कोटि मदन कौ देख्यौ सारु
नयन–कमल दल चितवनि चारु।
पीताबंर-परिधान मनोहर नख सिख सुंदर बन्यौं सिंगारु।।
पुरी द्वारका घर–घर मंगल जदुनंदन लीला–अवतारु[1]।
'परमानंद' प्रभु सब सुख–दाइक
दानव–दलन हरनु–भुव–भारु।।

११४६ (गौरी)

गोबिंद ! सोई दिन नीकौ जौ लौं मिलेई रहौ।
बलि-बलि जाउँ बात चलिबे की तुम्ह मत कबहुँ कहौ।।
राजसूय–क्रतु जीति सकल नृप इहि जानी संसार।
दुर्जोधन कौ मान–भंग कियो पाँड़ौ बाँह पगार।।
बिनती करै जोरि कर कुंती लागति हरि के पाँइ।
'परमानंद' स्वामी तुम राजा कत छाँडत इहि दाँइ।।

रुक्मिणी–सत्यभामा–प्रसंग–

११४७ (सारंग)

जा के पति माधौ सो काहे न फूलहि।
सुंदर चतुर मनोहर मूरति दूलहु कान्ह रुकुमिनी दूलहि।।
बहुत पुन्य तप को इहै फलु
लोचन भरि देखहि स्रुति–मूलहि।
राजु करौ दंपति उह नगरी जोरी आनि बनी समतूलहि।।
'परमानंद–गौरी जिहिं[2] पूजी क्यों न होहि बिधिना अनुकूलहि।
हरि लै चले पद्मिनी छल–बल को मेटै सिसुपाल की सूलहि

११४८ (सारंग)

रुक्मिनी बूझति है गोपालहिं।
कहहु[3] बात अपने गोकुल की पहिलौ रस ब्रजबालहिं।।
जब तुम गाँइ चरावनि जाते उर धरते बनमालहिं।
परम रसिक रीझी ही राधा अंबुज–नैन बिसालहिं।।

---

१. अवतार (ग. ङ. छ.)
२. जिनि (ङ. छ.), ३. कहौ (ङ. छ.)

सुनि इहि बचन सजल भरि लोचन प्रीति नंद के लालहिं।
'परमानंद' प्रभु रहे मौन धरि घोष–बात जिनि चालहिं•।।

११४६ (सारंग)

जब तुम रहते ग्वालनि–साथ।
अपने गाँउ की पहिली बातैं क्यों न कहत जदुनाथ ?
सतिभामा के बचन सुनत ही नीचौ करि रहे माथ।
आई सुरति नंद–जुसदा की क्षीर[1] पियौ जिनि हाथ।।
पर उत्तर[2] को देइ त्रिया सौं[3] सुमिरे बाल–बिनोद।
'परमानंद' प्रभु रहे मौन धरि चित गौ[4] गोकुल–कोद।।

श्रीबलदेवजी प्रसंग–

११५० (सारंग)

चलहु राम ! जईये ब्रजवास।
सुंदर–स्याम कहत अपने मुख बैठी[5] कुँवरि रुकमिनी–पास।।
सो सुख हम द्वारका न पायौ अरु मथुरा के राज विलास।।
जो सुख हम बृंदावन पायौ गोपिनि मुख–अवलोकन–हास।।
राजसूय–प्रसंग जमुना–तट सकल कुटुँब–सँग करि लेहु।
'परमानँद' स्वामी सुख–सागर सुमिरत राधा–बाल–सेनहु।।

११५१ (सारंग)

गोबिंद ! गोकुल चलौ जहाँ आनंद रहत मनु।
गोपी गाँइ ग्वाल[6] मात जसोदा खेलनि कौं बृंदावनु।।
जद्यपि राज द्वारका हमारौ बिलसत है रजधानी।
बाल–केलि–सुख कबहुँ न पायौ बिनु प्रभु जमुना–पानी।।
पिता नंद अति भलौ मानिहै बेगि पयानौं कीजै।
कहि[7] बलभद्र सुनु[8] जदुनंदन ! उन्हें जाइ सुख दीजै।।
'परमानंद स्वामी सब जाने आधि–मध्य–अवसान।
बिदा राम की करी प्रीति करि हँसि उठि दीने[9] पान।।

• *साधारण परिवर्तन के साथ पद सं० ४८८८ पर सूरसागर में भी*
१. छीर (ग. घ.) खीर (ङ. घ.) खीर (ङ. छ.), २. ऊतर (छ)
३. कों (ङ. छ.), ४. गयो (ग. घ. ङ. छ.)
५. बैठे (ग. घ. ङ. छ.), ६. ग्वाल जसोदा (ग. घ. ङ. छ.),
७. कहे (ग. घ. ङ. छ.)
८. सुनौ (ग. घ. ङ. छ.), ९. दीनों (घ.)

११५२ (सारंग)

तुम चलि जाहु गोकुल हीं रामु।
बहुत दिवस बीते ब्रज देखें बाल–बिनोद हमारे धामु।।
ऐसे बचन सुने जु मया के संकर्षनु माँग्यो रथ साजि।
तजि द्वारका घोष–गमन कौं कंचन जीन पलाने बाजि।।
पाँइ–लागन माता सौं कहियौं पिता नंद सौं चरन–प्रनामु।
सब ग्वालनि सौं अंक–मालिका
गोपिनि सौं सँदेसनि कामु।।
ऐसी कृपा प्रीति ब्रज–ऊपर
नाहिंन छिनु बिसरति उह बात।
रास–बिलास 'दासपरमानंद' कालिंदी बृंदावन–पात।।

११५३ (धनाश्री)

अब ए नैन भए अपराधी।
दरसन–हीन दीन-दुर्बल तनु देह जु रहत कर्म की बाँधी।।
जाम गए बासर बहु बीते बरषौ गए सँदेसु न आयौ।
कैसै प्रान रहें प्रीतम–बिनु सागर–तीर स्यामु लै छायौ।।
सोच करति बैठी ब्रज–ललना
तौ लगि संकर्षनु चलि आयौ।
'परमानंद' स्वामी के आगें समाधान कै सब समुझायौ।।

११५४ (सारंग)

इहि गोपाल की राजधानी।
अहो सुनु राम ! जहाँ तुम फिरते खेलत कसोहि तानी।।
असम–सिला जहाँ भोजन करते इहि झरना इहि पानी।
इहि तरुवर इहि पत्र मनोहर जहाँ चातक–पिक–बानी।।
हँसि बलभद्र कह्यौ गोपिनि प्रति औरै रचना ठानी।
सोर सहस्र अठोतर सौ पै कहियत हैं घर–रानी।।
क्यों[1] हरि बसहिं द्वारका–नगरी सिंधु–तीर–रति मानी।
'परमानंद' स्वामी मनमोहन काम–प्रेम सुख दानी।।

---

१. कै हरि (क. ग. ङ. छ.)

११५५ (सारंग)

मिलन–हीन दुख पईयतु राम !
बिरमि जु रहे द्वारका–नगरी बाढी प्रीति कनक–रुचि–धाम।।
कहिबे कोंऽब रही बे बातें सुनिबे कोंऽब रहे गुन–ग्राम।
मनु अरु नयन अनाथ भए बल ! बिनु देखें मूरति घनस्याम।।
राजा भए बिसरि गयौ गोकुल भावन लागीं लोचन–बाम।
'परमानँद' प्रभु सबै बिसराई इहि रस तज्यौ दोहनी–दाम।।

११५६ (गौरी)

कत हरि आवत हैं ब्रज–बास।
अब भए पुरी द्वारका–राजा बहुत नारि हैं पास।।
कहिबे कौं रही उय[1] बातें सुनिबे कौं गुनग्राम।
दरसन मिलन भयौ अब दुर्लभ तुम परदेसी राम।।
लोचन सजल प्रेम–पुलकित तनु ऊभी लेति उसास।
कृष्ण–ध्यान लीलागुन गावति हित 'परमानँददास;।।

११५७ (सारंग)

बृंदावन काहे कों भूल्यौ रामु।
बाल–बिनोद किये सुख बिलसे कमलनयन घनस्यामु।।
पुरी द्वारका भए बहुत दिन हरि सागर के तीर।
सुनियतु बात राज–लीला की गृह–मेधी जदुबीर।।
बहुतै नारि बिबाहीं सुंदरि सब ही पर अनुराग।
सत्यभामा रुक्मिनी सुहागिनि पूरे तिनि के भाग।।
एक तेरे दरसन के कारन तरसत[2] बल ! ब्रज के लोग।
'परमानंद' प्रभु करुना–सागर काहे न हरत बियोग।।

११५८ (सारंग)

अब घर कियौ द्वारका–नगरी प्रभु सागर[3] के तीर।
महा बिभूति राज–लीला में को कहि सकत अभीर।।
जे बिनोद कीने बृंदावन आपुन[4] तिरीछे होत।
'परमानंद' प्रभु आनि मिलावहु चरन–कमल भव–पोत।।

---

१. ए ही (ग) ओई (ङ) वेई (छ), २. तरसत हैं ब्रज लोग (ङ. छ.)
३. सायर (ग. घ. ङ. छ.), ४. अपुन

११५६ (सारंग)

जद्यपि पाई राजधानी।
बार–बार बृंदावन की हरि कहत कथा अपनी।।
अब नए कनक–पर्जंक परम रुचि रची रुचिर रमनी।
सो सुख पत्र डसाइ राधिका सँग सोवत अवनी।।
अब ए भूषन अंग–अंग प्रति मरकत–लाल–मनी।
'परमानंद' प्रभु गुंजा–पुंज की सोभा तउ न बनी।।

११६० (सारंग)

राम देखनि लागे ब्रज–साजु।
पुरी द्वारका काहे लागै नंद हमारौ[1] राजु।।
हौ तुम दुखी बिरहके कातर सहि न सकत बियोग।
गोपी–गाँइ घोष के बासी प्रीतमुं अपने लोग।।
अनुज हमारे ऐसी कीनी तुम सौं राख्यौ बीच।
देव–काज माँगे नहिं राखे बरु उह भलौ दधीच।।
बाल–दसा पोषि प्रतिपाले उइ जननी तुम तात।
'परमानंद' कहै संकर्षनु अँसुअनि सींचत[2] गात।।

११६१ (सारंग)

बहुत दिन सामचार नहिं पाए।
कमल–नयन की कुसल पूछिये राम पाहुने आए।।
जब तें गए द्वारका माधौ राज–काज चितु दीनों।
हमारे भाग्य[3] की चरचा देखौ बहुरि न इत मन कीनौं।।
बहुत लालसा गोप–ग्वालिनि कें कान्हें कहाँ हौं मिलिये।
'परमानंद' स्वामी कौं भेटन इनि के सँग उठि चलिये।।

११६२ (सारंग)

करत गोपाल की दुहाई।
मात्यौ हलधर बदत[4] न काहू जमुना उलटी बहाई।।
घूमत[5] नयन चलत डगमगत जनुऽब रूप कौ कूट।
अंबर नील अटपटे ओढें कनक–कटोरिया घूँट।।

---

१. हमारे (ग. घ. ङ. छ.), २. सेंचत (ख.)
३. भाग (ग. घ. ङ. छ), ४. गनत (ग. ङ. छ), ५. घूरत (ग. ङ. छ)

जुवती–सहस्र संग इक लीनें बन–बन गावति गीत।
मार्‌यौ द्विविद कंस कौ साथी कर बलभद्र पुनीत।।
जय–जय राम करत देवांगन बरषत कुसुम अपार।
'परमानँद' स्वामी के भ्राता फनि–मनि धरनि अधार।।

११६३ (सारंग)

कबहुक ऐहैं हो ! कुंती दुख–दाहक।
कहहु राम ! अब इहि सुनियत है अर्जुन के रथ–बाहक।।
द्रुपद–सुता की लाज निवारी सभा–माँझ पत राखी।
दुर्जोधन कौ मान–भंग कियौ देव मनुज–मुनि साखी।।
जद्यपि राज द्वारका कीनौं ब्रज काहे बिसरायौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर करत आपनौं भायौ।।

सुदामा–'चरित्र–

११६४ (सारंग)

सुदामा मंदिर देखि डर्‌यौ।
इहाँ हुती मेरी तनक मडइया कौन भूप उतर्‌यौ।।
द्वारे ह्वै कें कामिनि बिनवति जात कहाँ डगर्‌यौ।
आबहु कंत ! अनंत कृपा भई कमला–कंत ढर्‌यौ।।
बाँह पसारि लै चली भवन में जित–तित धाम भर्‌यौ।
'परमानंद' प्रभु के दरसन तैं आप समान कर्‌यौ •।।

कुरुक्षेत्र मिलन

११६५ (सारंग)

आये मेरे पाहुने मिलनु।
नंद–जसोदा उठि–उठि भेटत आपुनें ललनु।।
सूरज–पर्व भयौ कुरु–मंडल सब कोउ आयौ जात।
सब जादौ बसुदेव–देवकी रच्यौ सँजोग बिधात।।
गोपी–ग्वाल सबै मिलि आए पूजे चरन–सरोज।
भरि–भरि अंक परस्पर भेटत नैननि उमग्यौ रोज।।

• *कुछ अन्तर से पद सं० ४८५३ पर सूरसागर में भी*

काली–दमन पूतना–सोषन संखचूड कियौ घात।
'परमानंद' गोवर्द्धन राख्यौ एक हाथ दिन सात।।

११६६ (सारंग)

माधौ जू ! ओइ[1] औसर चलि बीत्यो।
बृंदावन महँ मिलि खेलत हे करत हमारौ चीत्यौ।।
काल एक–रस कह्यौ न जाई त्रिविध बात दरसावै।
कबहु बियोग होइ प्रीतम सौं कबहूँ आनि मिलावै।।
हम गोकुल तुम पुरी द्वारका भाग्यनि[2] दरसनु पायौ।
जब रबि-ग्रहन भयौ कुरु-मंडल तब सब कोऊ आयौ।।
गोपी–बचन कहति बिरहातुर प्रेम न हृदै समाई।
'परमानंद' प्रभु रसिक–सिरोमनि जीवें कौन उपाई।।

• • •

१. वह (ग. घ. ङ. छ.)
२. भागनि (ङ. छ.)

परिशिष्ट

(क) उत्सव और त्यौहार

(१) वामन–द्वादशी

११६८ (बिलावल)

वामन आए बलि पें माँगनि।
अति अनूप रूप कहा कहियतु ठाढे पौरी के आँगनि।।
पढत बेद–धुनि कहत सुकंठनि गावत मधुरे रागनि।
सुनत राग मन लागत नीकौ बालक गनियतु जागनि।।
सुनि बलि राजा मुदित भए अति कहाँ तैं आए भागनि।
विद्या अधिक अगाध अंबु–निधि कौ कहुँ पावत थागनि।।
लाए बोलि होत जहाँ जग्य अजिन कमंडलु हाथनि।
'परमानंद' चकृत बलि राजा कोऊ नहिं संग न साथनि।।

११६९ (बिलावल)

बलि राजा कौ समर्पन साँचौ।
बहुत कह्यौ गुरु सुक्र देवता
मन कौ दृढ आपुन नहिं काँचौ।।
जग्य करत हैं जा के काजें सो प्रभु आपुहि जाँचौ।
'परमानंद' प्रसन्न भए हरि जो जन कौ जानत हैं साँचौ।।

११७० (सारंग)

देव–काज करन कों प्रगटे ब्राह्मन है हरि आए।
ठाढे हैं द्वारें जग–जीवन सेवक सबद सुनाए।।
बालक एक अनूपम द्वारें बोलत बेद सुबानी।
रूप एक अनूप कहाँ लौं बरनौं अंग–अंग प्रतिदानी।।
देखनि उठे जग्य–साला तैं बलि राजा सुख पायौ।
देखत देव–देव कहि बोले परे चरन सिर नायौ।।

आज्ञा कीजैं बाल मनोहर ! जो माँगौ सो दीजै।
गाँउ कोटि अरु रतन पदारथ जो चाहौ सो लीजै।।
सुनहु नृपति ! देवे कौ समरथ इहि नहीं काज हमारे।
तीन पैंड बसुधा मोहि दीजै जहाँ रचौ आगारे।।
बालक बुद्धि यह माँगि न जानै माँगौ और बिसेखैं।
त्रैलोकी लौं जो तुम दैहौ सो तौ हमहि अलेखैं।।
पद–त्रै भई अवनि त्रिभुवन की बहुत लोभ नहिं मेरे।
मन भावै तो दीजै राजा ! जो सरधा है तेरे।।
सुक्र कहैं बालक–बुद्धि राजा कपट–भेष हरि लीनौं।
ऐसै करिकें सरबसु लीनौं स्वर्ग–मर्त्य अघ तीनौं।।
दैन कह्यौ मैं असत न भाषौं जो कछु क़हौ करौंगौ सोई।
जज्ञ-पिता अपने कर लेत हैं सकल पदारथ काहे न होई।।
देत दान नृप अति आदर करि हरि कीजेऽब बलि दीनौ।
ततछिन जाइ अकासहि पहुँच्यौ और रूप हरि कीनौं।।
पुहमी स्वर्ग भए दोऊ पद एक पाँउ नहिं पइये।
मापौ पीठ हमारी प्रभु तुम ! ऐसौ तुमकौ चाहिये।।
तीनौ लोक देंन कौं बैठे लाज न आवत अपनें।
बस्तु बिरानी दीजे तुमकौ सुख नहिं पइयतु सपनें।।
घर–घर नीके बचननि सुनि कै राजा मन हरषाने।
आनँद भयौ जबहि बलि बाँधे तऊ न मन करषाने।।
पद एक पीठि पुनीत करी हरि बरु पायौ अति भारी।
'परमानंद' भक्त–हित कारन सदा रहत आगारी।।

११७१ (सारंग)

भक्तबछल गोपाल दयानिधि देवनि कौ सुख दीनौं।
अति प्रताप वेद नहिं समुझत
तनक ही में लघु तन कीनौं।।
बलि राजा कें अति कृपा जिहिं निगम नेति करि गीनौं।
'परमानंद' पूरन कृपा हरि घर बसि आनँद दीनौं।।

११७२ (देवगंधार)

बलि के द्वारे ठाढे वामन।
स्रवन सुनत ही आनंद उपज्यौ कह्यौ भीतरें आवन।।

चरन धोइ चरनोदक लीनौ कहौ विप्र ! मन–भावन।
तीन पैंड धरती हौं माँगौ परन–कुटी इक छावन।।
या कौं विप्र ! कहा तुम माँग्यौ दैहुँ हीरा–रत्न बहु गाँवन।
'परमानंद' प्रभु वचन न पलट्यौ लाग्यौ पीठ मपावन।।

११७३ (सारंग)

बलि राजा कौं पताल पठायौ देव अभै–पद पायौ।
वामन-रूप धर्‌यौ जग-जीवन कस्यप-सुत होइ आयौ।।
अति सुंदर बालक बलि द्वारें लघु तन देखियत नीकौ।
दृष्टि परी बलि राजा महाबलि सबै देवनि कौ टीकौ।।
कहाँ सौं आए भाग सौं पाए कछु सेवा हमें दीजै।
जो आग्या दीजै कछु हमकौं चाहौ सो तुम लीजै।
पद–त्रय भूमि दीजै महाराजा !
कुटी एक पढिबे कौ पइये।
और नहीं कछु तुम सौं माँगौं इतनौ हमकौं चहिये।।
बलि राजा हरष्यौ अति मन में रूप-छक्यौ अति भारी।।
जो भावै सो लीजै महाप्रभु ! 'परमानंद' बलिहारी।।

११७४ (सारंग)

बलि राजा है मन कौ मोटौ।
शुक्र, गुरू की बात न मानी हरि सौ पर्‌यौ न खोटौ।।
जो बोल्यौ सो प्रतिपालन कीनौं
मति कहूँ न इति–उति डोलै।
ताकौ प्रण राख्यौ हरि–नागर जो बोलै सो बोलै।।
देखौ बलि राजा के कारन वामन–तनु वर लीनौ।
पद–त्रय–मिस छल पहुँच्यौ पातालै मापि पीठ दृढ कीनौ।।
बलि राजा बड़भागी कहियतु जाके हेत अवतरन कीनौ।।
'परमानंद' देव–दुख निबर्‌यौ भक्तनि कौं सुख दीनौ।।

११७५ (सारंग)

ऐसौ बटुक कहौ कैसै पैयतु।
बहुतइ काल समाधि में बैठे अन्न उदक बिनु थैयतु।।
द्वारावति षट्मास जो बसियतु
भुव–मंड़ल दहिनौ व्रत फेरियतु।
यज्ञ अयुत धन धेनु–कनक दै विप्र त्रिवेनी में मरियतु।।

तौ हूँ या बलि कौं दरसन पुन्य–बिना कैसै करि पैयतु।
कहा जानें को यज्ञरूप तुम !
जा कौं निगम नेति कहि गैयतु।।
कछु आग्या तुम हम कौं दीजै
लीजै जो कछु अपुने चहियतु।
देखे नहीं सुने नहीं कबहूँ कौन ठिकाने कहाँ तुम रहियतु।।
सत्य वचन तू मानै राजा ! वेद–वचन सत्य खैयतु।
सुक्र कहै तुम सुनौ राजा जू !
देव नहीं श्रीकृष्ण कहैयतु।।
कपटरूप करि सर्वसु हरिहै
कहौ पाछें तुम कहाँ जाइ रहियतु।
कहै राजा तुम सुनौ गुरुदेवा ! ऐसी कंहाँ भाग्य तैं पैयतु।।
जाकौं यजत सो लेत अपुन कर
सर्बसु लेहु सरजै रहियतु।
कर–जल लेत मेटि गए लघु तन
पद दो मापै सरग–मृत भैयतु।।
एक पद पुहुमी दीजै मोहि राज़ा !
करि कुटी छावत तहाँ सुखी रहियतु।
राखौ सत्य पीठ मोहिं मापौ तीन चरन पूरन कर दयैतु।।
दै पद पीठ पाताल पधारे वर पायौ घर सदा हरि रैयतु।
बलि राजा महा बडभागी संत–समागम–गुन–गैयतु।।
'परमानंद' कृपाल भए हरि बरु जसु जग में छैयतु।।

(२) दशहरा

११७६ (सारंग)

विजय–सुदिन आनंद अधिक छबि मोहन बसन बिराजत।
सीस पाग रही बाम भाग पर लटकि जवारे छाजत।।
तिलक तरल द्वै रेख भाल पर
कुंडल–तेज तरनि द्वै काननि।
मुख की सोभा कहाँ लौं बरनौं मगन होत मन माननि।।
कटि–पट छुद्र घंटिका मनि गन सोहत जोहत मोहत।
'परामनंद' निरखि नँदरानी लेति बलैया दोउ हत।।

११७७ (सारंग)

सुदिन सुमंगल जानि जसोदा लाल कौं पहिरावति बागौ।
अँग–अँग भूषन ललित मनोहर लटकि जवारें पागौ।।
ब्रज–सुंदरी निरखि मन हरषति मगन होत मन फूलत।
रूप–रासि रस–रसिक लाडिलौ देखियतु नव तन भूलत।।
मैया देखति लेति बलैया मुख चूँबति सचु पावति।
'परमानंददास' मन हरषत सुमिरि–सुमिरि गुन गावति।।

११७८ (सारंग)

जवारे पहिरें गिरिवरधारी।
जुवती–जन–मन–ताप–निवारन आनंदमंगलकारी।।
सुंदर लाल माल ललित तन देखि जननी कर वारी।
मनमोहन के रसिक रूप पर 'परमानंद' बलिहारी।।

११७९ (सारंग)

आसौ मास सुभ मंगल दसमी धरत हैं लाल जबारे री।
सबै सिंगारत स्यामसुँदर कौं तन–मन–धन सब वारे री।।
गृह–गृह तैं सब सखी बुलाईं नाचत–गावत आवें री।
देखि सरूप मदनमोहन कौ प्रमुदित मोद बढावें री।।
मेवा-मिठाई देति सबनि कों उन्मत ग्वालि लै आई री।।
आप हीं खात खवावति औरनि
तब जसुमति मुसिकाई री।।
सबै सखी मिलि खेल मचायौ आए जमुना–तीरे री।
'परमानंद' स्वामी–सँग क्रीडत
बहोत गोपिनि की भीरे री।।•

११८० (सारंग)

गिरिधर लाल बैठे है बाजी।
बाँध बाम कर दच्छिन चाबुक हरि की फौज चले साजी।।
बाजत बेनु सखा सब आए अमर–पुरी सब भाजी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर राखी अपनी बाजी।।

• *यह पद इस रूपान्तर से 'अ' ६१ में*
आजु हमारे विजय–दसहरा धरिये लाल जवारें हो।
करि सिंगार स्यामसुंदर कौ अपनौ तन–मन वारे हो।
सब सखियनि मिलि मतौ उपायौ चलिये जमुना–तीर हो।
'परमानंद' जसुमति प्रफुल्लित बहु गोपिनि की भीर हो।।

११८१ (सारंग)

जवारे बाबा मोहि पहिरायौ।
या ही छिन अब ही पहिरोंगौ हौं तोहि देखि बन आयौ।।
हौं वारी मेरे लाल–ललू पर बचन सुनत सचु पायौ।
'परमानंद' जसोमति रानी देह–दसा बिसरायौ।।

११८२ सारंग

जवारे जग मोहन के माथें पहिरें हैं सुखकारी।
निरखत लाल–अँग–अँग छबि मोही ब्रज की नारी।।
पहिरें रुचिर बसन अरु भूषन कोटि काम छबि कीने वारी।
नंद–कुँवर नख–सिख लौं निरखै 'परमानँद' बलिहारी।।

११८३ (सारंग)

दसहरा पूज्यौ री ! नँदलाल ।
रहे लटकि ज्यौं पाग अलक पर झलकि रह्यौ सब भाल।।
नख–सिख प्रति बहुमोलिक भूषन उर मोतिनि की माल।
कौस्तुभ-पट्टिक–पाँति पचलर सौं उदर रुक्यौ दुति-जाल।।
हाइ–भाइ–भरि भृकुटी दोऊ अँग–अँग रसिक–रसाल।
नैननि सौं नैननि अबलोकित बिथकि रही ब्रज–बाल।।
ढिग द्विज नंदराइ जू ठाढे ओर–पास हैं ग्वाल।
सोभा सांग करी ब्रजरानी दियौ है डिठौना भाल।।
जगमगात बागौऽरु काछनी चलत मधुर गति चाल।
'परमानंद' पट खुले बंद देखे निजु सुभट गोपाल।।

११८४ (गौडी)

बेगि चलौ उनि देखिये बैठे सिंह–द्वारे।
आजु बने नंदलाल जू पहिरें जु जवारे।।
प्यारी जवारे कर लियें पिय पाग सु चोपैं।
कुमकुम–तिलक सु भाल दै अछत सु ओपैं।।
कर ही जवारा देखि कें जसोमति पैं दोरे।
बलदाऊ कूँ बोहोत हैं मेरे हैं थोरे।।
तब जसोमति मुसकाइ कै लीनी जु बलैया।
चाहौ तौ कछु और लेहु मेरे कुँवर कन्हैया।।

घर–घर तैं आईं सबै आजु परब मनायौ।
'परमानंद' रानी भनै भलै दसहरा आयौ।।

११८५ (रामकली)

आजु बड़ौ दिन बिजै–दसमी लालन उबटि न्हवाए हो।
रतन–खचित कंचन के भूषन नए–नए बसन पहिराए हो।।
लटपटि पाग जवारे सोभित कुंकुम–तिलक बनाए हो।
बारंबार करति नौछावरि जसोमति लेत बलाए हो।।
सखा संग संकर्षन आगें बाजे बिबिध बजाए हो।
जै–जैकार करत सुर–नर मुनि निरखि परम सुख पाए हो।।
कुलह पाग सिर सोभित सुंदर ता पर बने हैं जबारे हो।
बीत्यौ सरद दिवारी आई 'परमानंद' बलि जाए हो।।

११८६ (कान्हरौ)

आजु दसहरा दिन सुखदाई।
करहु सिंगार स्यामसुंदर कौ लाल माँगै सो कुँवर कन्हाई।।
नौतन पट–भूषन पहिरावत लियौ सरस सुगंध बनाई।
बानिक बिबिध बनाइ सुंदरी कुँवर तहाँ लै टीकौ आई।।
बिच-बिच हार लाल-उर-सोभित मधु-मेवा पकवान-मिठाई।
'परमानंददास' कौ ठाकुर तब ही गोपी महानिधि पाई।

(३) श्रीगुसाईंजी

११८७ (देवगंधार)

श्रीबल्लभनंदन आनँद–कंद।
मायावाद–निवारन–कारन प्रगटे द्विज वृंदावन–चंद।।
भजनानंद निकुंज–निवासी रास विलासी परम आनंद।
'परमानंद' प्रभु अगनित महिमा
पार न पावत है स्रुति–छंद।।

११८८ (देवगंधार)

श्रीबल्लभगृह सदा बधाई।
जब तैं प्रगट भए श्रीविट्ठल तब तैं महानिधि आई।।
भक्ति–भागवत कथा कीर्तन महा–महोच्छव प्रगट गुसाईं।
कल्प–बृच्छ फल फलित मनोहर नंद–सुवन सुखदाई।।

परम भजन पुरुषोत्तम–लीला प्रगट ब्रह्मादिक गाई।
लाल गोवर्द्धनधर की पद–रज 'परमानँद' बलि जाई।।

(४) बसन्त

११८६ (बसंत)

खेलि–खेलि हो लडैती राधा ! हरि के संग बसंत।
मदनगोपाल मनोहर मूरति मिल्यौ भाँवतौ कंत।।
कौन पुन्य तप कौ फल भामिनि ! चरन–कमल–अनुराग।
कमल–नयन कमला कौ वल्लभ कनकहिं मिल्यौ सुहाग।।
इहि कालिंदी इहि बृंदावन इहि तरुवर की पाँति।
'परमानंद' स्वामी–सँग क्रीडत[1] द्यौस न जानी राति।।

११९० (बंसत)

• लालन–सँग खेलनि फागु चली।
चोबा–चंदन अगर–कुमकुमा छिरकति घोष–गली।।
राती–पीती चोली पहिरें नौतन झूमक सारी।
मुखहि तँबोरु नयन–भरि काजर देति भाँवती गारी।।
रितु बसंत–आगमु–नाइक जोबन–भार–भरी।
देखनि चली लाल[2] गिरिधर कौ नंद के द्वार खरी।।
ताल–पखाबज बेनु–बाँसुरी गावत गीत सुहाये।
नवल गोपाल नवल ब्रज-बनिता निकसि चौहटै आए।।
देखहु आइ कृष्ण जू की लीला क्रीडत गोकुल माँही।
कहत न बनै दास 'परमानंद' इहि सुख अनतऽब नाँही।।••

११९१ (बंसत)

सहज प्रीति गोपालहि भावै।
मुखु देखें सुख होइ सखी री ! प्रीतम नैननि नैन मिलावै।।

---

१. बिहरत (घ)
• मोहन संग(अ. ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारंभ
२. रसिक (अ)
•• पद सं० ३४९१ पर सूरसागर में भी पाठ–परिवर्तन से प्रारंभ– हरि–सँग खेलनि फाग चली'

सहज प्रीति कमलनि अरु भानै
सहज प्रीति कुमुदनि अरु चंदै।
सहज प्रीति कोकिला–बंसतै सहज प्रीति राधा–नँदनंदै।।
सहज प्रीति चातक अरु स्वातै
सहज प्रीति धरनी–जल धारै।
मन–क्रम–वचन 'दासपरमानंद' सहज प्रीति कृष्णा–अवतारै।

११६२ (सारंग)

राजति है वृषभानु–किसोरी।
ब्रज के आँगन खेलति पिय सौं
रितु बसंत आगम जैसें होरी।।
ताल मृदंग बेनु चंग बाजै राजै[1] सरस[2] बंस–धुनि थोरी।।
अगर जवादि कुमकुमा केसरि
छिरकत स्याम राधिका गोरी।।
जबहि रबकि कैं पीत–पट पकरत
इहि रसु रसिक देत झकझोरी।
'परमानंद चरन रज बंदित राधा–स्याम बनी है जोरी।।

११६३ (बसंत)

फिरि पछिताहुगी राधा।
कत तू कत हरि कत ए औसर न करि प्रेम–रस–बाधा।।
बहुरि को[1] गोप–भेष ब्रज धरिहें कत[2] निकुंज–बन बसिहें।
इहि जडता तेरे जिय उपजी चतुर नारि सुनि हँसिहें।।
रसिक गोपाल मिलत सुख उपजै आगम–निगम पुकारै।
'परमानंद' स्वामी पैं आवत को इहि नेति बिचारै।।

११६४ (बसंत)

• चलि राधा ! तोकौं स्याम बुलावै।
उहै देखि बैनु मधुर धुनि तेरौ नामु लै–लै गावै।।

---

१. सरस रबाब (ग), २. उपंग (छ)

१. गोपाल–भेष कब (अ), २. कब वे कुंजनि (अ)

• प्यारी ! तू चलि स्याम० (२८, ४) तू चलि भामिनि ! स्याम० (४०.२) से भी प्रारंभ

देखहु बृंदावन की सोभा ठौर–ठौर द्रुम फूले।
कोकिल–नाद सुनत मन आनँद भँवर[1] भ्रमत रस–भूले[2]।।
उन्नत जोबन मदन–कुलाहल इहि औसर है नीकौ।
'परमानँद प्रभु प्रथम समागम मिलै भाँवतौ जी कौ।।

११६५ (बसंत)

खेलत मदनगोपाल बंसत।
नागरि नवल रसिक–चूडामनि
सब बिधि रसिक राधिका कंत।।
नैन-नैन-प्रति चारु बिलोकनि बदन-बदन-प्रति सुंदर हास।
अंग–अंग प्रति प्रीति निरंतर
रितु आगम निसि करहिं विलास।।
बाजत ताल मृदंग अधौटी डफ बाँसुरी कोलाहल केलि।
'परमानंद' स्वामी के संगम
मिलि नाचत–गावत रँग–केलि।।

११६६ (बंसत)

नवल बंसत नवल बृंदावन नवल स्याम खेलें होरी।
चोबा चंदन अगरु कुंकुमा छिरकत राधा गोरी।।
नव–सत साज सिंगार सुँदरी चली सबै ब्रज–खोरी।
और सुगंध लिये पहिरनि कौं
अबीर–गुलाल–भरी झोरी।।
बाजत ताल पखाज झाँझ ढफ और मुरली-धुन थोरी।
गावत राग बंसत सरस सुर बाला–बैसि किसोरी।।
चढि विमान देव-गन आए निरखि-निरखि यह जोरी।
'परमानँद' प्रभु के सँग खेलत बोलत हो हो होरी।।

११६७ (बसंत)

मदन–महोच्छव आजु राधे।
मदन–गोपाल बसंत खेलिहें नागरि बोध अगाधे।।
निसि बुधवार बंसत पंचमी रितु कुसुमाकर आई।
जगत विमोहत मकरध्वज की दुहुँ दिसि फिरिहै दुहाई।।
रति–पति राज–सिंहासन बैठ्यो तिलक पितामह दीनौं।
छत्र चमर तूनीर–संख–धुनि धनुष–चाप कर लीनौं।।

---

१. मिथुन–विहंगम झूले (अ), २. मूले (ग. ङ. छ)

चलहु सखी ! तहाँ देखनि जैये हरि उपजावैं प्रीति।
'परमानंददास' कौ ठाकुर सब जानत हैं रीति।।

११६८ (बसंत)

सुनि प्यारी के लाल बिहारी ! खेलनि चलिये खेलैं।
चंदन–बंदन और अरगजा कुमकुम–रस सब रेलैं।।
और लियें अबीर–अरगजा सत आछौ कुंज–कुंज में केलैं।
तुम हमकौं हम तुमकों छिरकैं रंग परस्पर झेलैं।।
अंतर–सुख मन की मन जानैं मुसकि छबीले छैलें।
'परमानंद' रसिक रस जानैं बाँटत रस की रेलें।।

११६९ (बसंत)

चतुर नारि नागर नायक सौं खेलनि आई हो ! होरी।
अंग–अंग भूषन अति राजत दियें लिलाट बेंदी रोरी।।
सौंधें भीनी सारी सोहै नील कंचुकी कसी डोरी।
उडत गुलाल अरगजा छिरकत केसर की छूटी कमोरी।।
ताल–मृदंग उपंग–बाँसुरी द्वार निसान घनघोरी।
नवल बंसत होत 'परमानंद' नवल नवल पिया जोरी।।

१२०० (बसंत)

अब जिनि मोहि भरौ नँदनंदन हौं ! व्याकुल भई भारी।
कहत–कहत कह्यौ नहिं मानत देखे नये खिलारी।।
कालि गुलाल पर्‍यो आँखिनि में अजहूँ न गई पीर सारी।
'परमानँद' नंद के आँगन खेलति ब्रज की नारी।।

१२०१ (बसंत)

मधुर–मधुर मुरली बन बाजै चलौ सखी ! देखनि जैये।
सकल सुगंध सँवारि अरगजा लालन के सिर नैये।।
गीत तुम सखी ! झेलत नँदनंदन राग बसंते गैये।
'परमानँद' स्वामी रस-बस करि तुम अति सुख दै सैये।।

(५) धमार

१२०२ (जैतश्री)

रितु बंसत के आगमें हो ! प्रचुर मदन कौ जोर।
केलि रस–झूमकरा।
राधागोरी सुंदरी हो ! सुंदर नंदकिसोर।। केलि०

झुंडनि मिलि गावति चलीं हो ! झूमक नंद के द्वार।
नृत्य करें ब्रज–सुंदरी हो ! मोहि लियो मन मार।। केलि०
विपिन गली सुंदर बनी हो ! ललित लवंगनि मेलि।
अंब मनोहर मौरिया हो ! करनि केतकी–बेलि।। केलि०
गोकुल गाँउ सुहाबनौ हो ! वृंदावन कौ ठोर।
खेलहिं ग्वालन–ग्वालिनी हो ! रसिक कान्ह सिरमौर।। केलि०
इक गोरी इक साँवरी हो ! इक चंद्र-बदन सोहै बाल।
एकनि कुंडल जगमगै हो ! एकनि तिलक सुभाल।। केलि०
एकनि चोली अधखुली हो ! एक रही बँद छूटि।
एक इकावलि उर डोलैं हो ! एक रही लर टूटि।। केलि०
एकनि चीर जु खसि परे हो ! एकनि लरकत लूमि।
एक अधर रस घूँटिही हो ! एक रही कंठ झूमि।। केलि०
ताल पखावज रँगु रह्यो हो ! बीना–बेनु रसाल।
महुबरि–चंग जु बाँसुरी हो ! बजावत गिरधरलाल।। केलि०
चोबा–चंदन कुमकुमा हो ! उडत गुलाल–अबीर।
सुर-नर मुनि-जन मोहिया हो ! व्योम विमाननि भीर।। केलि०
सुरत-समागम रसु रह्यौ हो ! मानहु महागज मंत।
'परमानंद' प्रभु श्रीपति हो ! रसिक राधिका–कंत।। केलि०

१२०३ (गौरी)

चलौ सकल मिलि खेलिये ! नंदा कें द्वार।
खेलत फागु गोपाल।
रितु बसंत बन गहगह्यौ। प्रफुलित ताल तमाल।। नंदा०
अति सुंदरि ब्रज–भामिनी। आइ भईं इक ठौर।। नंदा०
नव–जोवन वृषभनुजा। सखि गन नवल किसोर।। नंदा०
ढोल दमामा बाजहीं । श्रीमंडल मुख चंग।। नंदा०
मुरज रंज डफ दंदुभी। बीना बेनु उपंग।। नंदा०
गो–मुख भेरी बाजहीं। झालर झाँझि मृदंग।। नंदा०
घोर निसान गगन–धुनी। ब्रज–जनि लावहिं रंग।। नंदा०
चोबा चंदन अरगजा। बहु बिधि मलय सुगंध।। नंदा०
दै–दै तारी कंठ लावहीं। आलिंगन भुज–बंध।। नंदा०
नौतन केसरि घसि घोरी। कुमकुम रस–सुख–सार।। नंदा०
छुटीं पिचकाई जित–तितै। लागत ह्रदै–मँझारि।। नंदा०

तनसुख सारी लपटि रही। सकति न अंग सँभाल।। नंदा०
बूका बंदन उडि रह्यौ। दुहुँ दिसि अरुन गुलाल ।। नंदा०
नव सर माला गूंथि कें । जाई जूई बेलि।। नंदा०
पुलकि प्रेम पहिरावहीं। आनँद की झकझेलि।। नंदा०
नंदनँदन ब्रज–नाइका। भूतल करहिं अनंद।। नंदा०
गारी परस्पर गावहीं । नाचहि आपु सुछंद।। नंदा०
राग–भोग–रस–पूरिता। मुख–कर बीरा पान।। नंदा०
जन 'परमानंद' बलि बलि। चरन सरन भगवान।। नंदा०

१२०४ **(काफी)**

तुम आवौ री ! तुम आवौ।।
मोहन जू कौ गारी सुनावौ । होरी–रस–रंग बढावौ।।
हरिकारौ री ! हरि कारौ। द्वै बापनि बिच बारौ।।
हरि नटवा री ! हरि नटवा। राधा जू के आगें लटवा ।।
हरि मधुकर री ! हरि मधुकर। रस चाखत डोलत घर–घर।।
हरिनागर री ! हरि नागर। जाके बाबा नंद उजागर।।
हरि खंजन री ! हरि खंजन। राधा जू के मन कौ रंजन।।
हरि रंजन री ! हरि रंजन । ललिता लै आई अंजन।।
हम जानै री ! हम जानै। राधा गहि मोहन आनै।।
मुख माँडौ री ! मुख माँडौ। हरि हा–हा खाइ तौ छाँडौ।।
हम भरिहें री ! हम भरिहें । काहू तें नैक न डरिहें।।
हरि होरी हो ! हरि होरी । स्यामा जू केसरि ढोरी।।
हरि भावै री ! हरि भावै। राधा–मन–मोद बढावै।।
रँग–भीनें री ! रँग भीनें। राधा–बस मोहन कीनें।।
हरि प्यारौ री ! हरि प्यारौ। राधाजू कौ नैननि तारौ।।
हम लैहें री ! हम लैहें ! फगुवा लै गारि न दैहें।।
इहि जसु 'परमानंद' गावै। कछु रहसि बधाई पावै।।

१२०५ **(काफी)**

राधा–माधौ सँग–खेली।
बार-बार लपटाति स्याम-तन कनक-बाहु पिय-गल मेली।।
चोबा–चंदन सरस कुमकुमा बहुत सुगंध अबीर।
कुसुम–माल राजति उर–अंतर प्रहसित जादौ–बीर।।

मदन महोच्छव फाग मनोहर रति–रस फागुन मास।
गोप–बधू गावति नाना रँग बलि 'परमानँददास'।।

१२०६ (बसंत)

आजु माई ! मोहन खेलत होरी।
नौतन भेष काछि ठाढे भये संग राधिका गोरी।।
अपने भवन तै आई देखनि श्रीवृषभानु–किसोरी।
चोबा चंदन और कुमकुमा मुख मींडत लै रोरी।।
छूटी लाज तब तन न सँभारति
अति विचित्र बनी जोरी।
माँच्यौ खेल रंग भयौ भारी या उपमा कौं को री।।
देति असीस चली ब्रज–बनिता अंग–अंग सब भोरी।
'परमानंद' प्यारी की छबि पर गिरिधर देत अँकोरी।।

१२०७ (जैतश्री)

नंदकुँवर खेलत राधा–सँग जमुना–पुलिन सरस रँग होरी।
नव घनस्याम मनोहर राजत स्यामा सुभग दामिनी गोरी।।
केसर के रँग कलस भरे बहु संग सखा हलधर की जोरी।
हाथनि लिए कनक–पिचकाई
छिरकी ब्रज की नवलकिसोरी।।
चीर अबीर उडावत नाचत
कटि सौं बांधि गुलाल की झोरी।
मगन भईं क्रीडत ब्रजसुंदरि प्रेम–समुद्र–तरंग झकोरी।।
बाजत चंग मृदंग अधौटी पटह झाँझ झालर सुर घोरी।
ताल रबाब मुरलिका बीना मधुर सब्द उघटत धुनि थोरी।।
अति अनुराग बढ्यो तिहि औसर
कुल–लज्जा मरजादा तोरी।
मदनगोपाल लाल–सँग बिहरत देह–दसा भूली भई बौरी।।
एक गहति फेंटा फगुआ कौ एक करति ठाढी जु ठठोली।
एक जु आँखि आँजि कें भाजी
एक बिलोकि हँसी मुख मोरी।।
एकनि लई छिडाइ मुरलिका देति गारी मोहन कौं भोरी।
एक फुलेल अरगजा चोबा कुमकुम रस–गागरि सिर ढोरी।।

बिबिध भाँति फूल्यौ बृंदावन
कूजत कीर षट्पद पिक मोरी।
निरखति नेह भरी अँखियाँ सौं
ज्यौं चाहति निसि चंद–चकोरी।।
थके देव किन्नर मुनि-गन सब मनमथ निज मन गह्यौ लजोरी।
'परमानंददास' या सुख कौ चाहत बिमल मुक्ति–पदछोरी।।

१२०८ (ईमन)

हम–तुम मिलि दोऊ खेलें होरी नव निकुंज में जैये।
अबीर गुलाल कुमकुमा केसरि रंग परस्पर नैये।।
और सखी कोउ भेद न जानति ग्वालनि हूँ न जनैये।
'परमानंद' स्वामी–सँग खेलत मन–भावत सुख पैये।।

१२०६ (बसंत)

खेलत गिरिधर रगमगे रंग।
गोप–सखा बनि बनि आए हैं श्रीहलधर के संग।।
बाजत ताल मृदंग झाँझ ढफ अरु मुरली मुख चंग।
अपनी–अपनी फेंटनि भरि–भरि लिये गुलाल सुरंग।।
पिचकाई नीचे कर छिरकत गावत तान तरंग।
उत आईं ब्रज–बनिता बनि–बनि मुक्ताफल भरि मंग।।
अचरा उरसि फेंट कंचुकी कसि राखत उरज उतंग।
चोबा चंदन–बंदन में मलि भरति भामते अंग।।
केसौ-किसोरी दोउ मिलि विहरत इत रति उतहि अनंग।
'परमानँद' दोऊ मिलि बिलसत केलि–कला जु निसंक।।

१२१० (बसंत)

हो हो होरी ! हलधर आवै।
ऐसी प्रीति स्यामसुंदर सौं हरि–लीला अपने मुख गावै।।
पियें बारुनी मत्त संकरषन नैन रसमसे कच कछु ढीले।
भौंह चढी सिर पाग लटपटी
बचन गँभीर अधर–पुट गीले।।
नील बसन–छबि डगत चरन–गति
सुभ्र सरीर रोहिनी–नंदन।
'परमानंद' राम जुबती–प्रिय कुंडल एक चढाए चंदन।।

१२११ (सारंग)

अहो ! रस–मौरन मौरे लाल स्याम–तमाल होरी खेलहीं।
कनक–लता–संकुलित सघन में आनँद–मय फल फैलहीं।।
अहो ! गृह–गृह तैं नबला चपला सी जुरि–जुरि झुंडनि आईं।
अहो ! लहँगा पीत हरे अरु पाते सारी सेत सुहाईं।।
अहो ! अति झीनी झलकति तन नवसत रतन–जटित पिचकाईं।
कंचुकी कनक–कपिस सब पहिरें तहाँ झलकनि की झाईं।।
अहो ! कहाँ लौं कहौं सकल सोभा–जुत या गोकुल की नारी।
अँग–अँग–प्रति गिरधर गुनलंकृत विधिना जात बिस्तारी।।
अहो ! प्रफुलित बदन बोलत मुख गावति मीठी–मीठी गारी।
धुनि सुनि स्रवननि निकसी सिंहपौरी मोहनलाल निहारी।।
अहो ! उत तैं श्रीवृषभानु–दुलारी आवति रूप–घटा री।
छापे ही झूमकी अंग सजि चहुँ–दिसि लगी किनारी।।
अहो ! बेनी चंपक–बकुलनि–ग्रंथित रचि–रुचि सखी सँवारी।
मोतिनि–माँग और सीस–फूल मधि रतन जटित फुलकारी।।
अहो ! स्रवननि कुसुम–जराई राजै लर द्वै–द्वै दुहूँ ओरी
अहो ! लटियन पै जु लसत दमकन तैं छबि की उठति झकोरी।।
चल दल–पत्र प्रवाल वज्र सो कौंधत पंगति जोरी।
भाल दीपत आड मृगमद में वक्र भौंह–जुग मोरी।।
अहो ! अँखियाँ सुखियाँ सुखनि बडेडी कहा कहौं जु लुनाई।
अहो ! सेत–अरुन ऊपर मधुराई ता में कछुक चिकनाई।।
वसीकरन–रस सौं मिलि रचि–पच अंजन–रेख बनाई।
रति–पति ललकै रस–पति झलकै परमावधि चपलाई।।
अहो ! नासा सुभग निपट सुढारी बेसरि ससि आकारी।
अहो ! पन्ना की रचि चुनी बहु बरनी छाँह सीस पर कारी।।
अहो ! सलिल कुँवर सातों–जग–ऊपर अधर–अरुनता भारी।
गवन करत जब हंस लजावत अरक–थरक दुति न्यारी।।
अहो ! दसनावलि धनि–संपति लिये दरसत जब मुसिकानी।
चिंबुक–मध्य सामलतन राजें सुख में सुखद सयानी।।
अहो ! ग्रीवा लटक अटक नागर की बोलति अमृत–बानी।
चोली मुलकट हेम–गुननि की कवच सुभटता तानी।।

अहो ! चौकी चंपकली कौस्तुभ–मनि बृंदावन में लीनी।
कहत न बने रहसि में रीझे मदनगोपाल मैं दीनी।।
अहो ! चंपा–हार पचलरी छाए परसत किंकिनी कटि छीनी।
ऊपर भेद भारी भूषन की अद्‌भुत रचना कीनी।।
अहो ! बाजूबंद ताटंक सोहै नव बहु मोती लागे।
अहो ! तूईं तडित कीनी मैं तीन्यों रंग पागे।।
अहो ! नवग्रह गजरा जगमगात मन जगमग पोहोंची चूरी आगैं।
अचल सुहाग–भाग की लहरें कर में मेंहदी दागै।।
अहो ! पाँच कमर–पटियनि में गूँथी डोरी चुनाव पै डोले।
फूलत झबी–फबी सुंदरता फुंदना जहाँ मखतूले।।
अहो ! लहँगा लाल गुलाल रंग–सम पुरट उदक सौं झूलै।
झंकृत कोकिल–स्वरमर्दन करि निपुन छबीलौ बोलै।।
अहो ! दर्पन दिपति मुँदरिया धरनी तेज–पुंज की मगरी।
दस ससि कें उनमान–प्रमाननि चमक जनावति सगरी।।
अहो ! हाव–सागर–रबनी बाँधेगी कृष्ण–साँझ के पगरी।
मिलि करि बृंदारन्य–बिपिन में जब–तब यौं मगरी।।
अहो ! जेहरि तेहरि पाँइनि अनबट कुंदन की हीरा–वलिता।
पीन पिंडरिया तै सेई चरननि जावक दीनौं ललिता।।
अहो ! इहि विधि राधा–रानी गाई नाँहि सामरी–सरिता।
जो–जो रसिक गाइये सो–सो प्रेम–पुंज–फल–फलिता।।
अहो ! सब समाज भामिनी–दामिनी वृंदनि–वृंदनि हेली।
अहो ! कंज–पराग अरगजा गोरा साजि लियें जु सहेली।।
अहो ! लटकत आवत भामिनि–कंठनि बाँह परस्पर मेली।
उनमद कोऊ बदत न काहू स्याम–समर बनि–बेली।।
अहो ! बाजत ताल मृदंग ढोल डफ झाँझनि झमक लगायौ।
करत टोक हरि प्रीतम सौं दुरि–'मुरि नैन नचायौ।।
अहो ! मुरली–सुर फेरत घोरन में टेरि यह दरसायौ।
चल्यौ सुगंध सहस्र चारि लौं कोऊ क्यों रहवायौ।।
अहो ! बगर–बगर तैं सखा स्रवन सुनि जूथनि–जूथनि धाए।
अपनी भीर–सहित संकर्षन लै श्रीदामा आए।।
अहो ! केसरि–कुंकुम–माट औरु मथना तेल–फुलेल मिलाए।
तोले तोक सुबल श्रीदामा आगे लैनि पठाए।।

अहो ! इतहूँ बाजे लागे बाजनि दुंदुभि धौंसा साजे।
रुंज मुरज आवज सारंगी जंत्र किन्नरी बाजे।।
अहो ! इनि मधि मुकुट धरें नँदनंदन नटवर–भेषनि साजे।
यह सिंगार नंदराइ हस्त कौ कोटिक मन्मथ लाजे।।
अहो ! नख–सिख तैं आभूषन किएँ जगमगाइ मेरी माई।
मानत नहीं जब वचन अटपटे उत तैं अँगुरी फिराई।।
अहो ! चली हैं निंसक निरंकुस करिनी भई इक ठौर तहाँ ई।
सुबल तोक दोउ गहि लीने जानि काहू नहीं पाई।।
अहो ! राखे हैं ओलक–हेतु ब्रज–सुंदर फिर तुम कौं कहाँ पैये।
दगा कियौ किधौं साँची कहत हैं कहौ किहि बात पतैये।।
अहो ! जो को तोहि बाँधि–बाँधि कें साटनि नृत्य नचैये।
जो साँचे ही इनि बातनि तैं देह छाँडि पुनि नैये।।
अहो ! बड़ी बेर भई सुधि जब लीयें खेले दोउ घेरे।
दूरि भाजि अब कहत स्यामघन पीतांबर कौ घेरे।।
अहो ! जानी सोई ढूँढि पकरे नद छूटे दौरि दिये दरेरे।
खिरका खेंचि दई लै साँकर तरुनी गहि हरि हेरे।।
अहो ! चढि-चढि अटा चहूँधा चितवति भरि-भरि कनक-कमोरी।
नांहिन दाऊ बदलौ लेवे कौं सहचरी रँग–रँग बोरी।।
अहो ! रंग जु छूटत हैं जल–जंत्रनि बोलत हो–हो होरी।
सुबल भली बिधि चौंकि मिलि–मिलि यह सुख दीनौं गोरी।।
अहो ! भई मोर गोचर की नीके ललिता सैन जनाई।
दुरि पकरौ तुम अब मोहि मेलौ सौंठ लाल की खाई।।
तब जो जीव दाव छिटकायौ समझे न भेद कन्हाई।
घर के पाट उघारि भजे दुहुँ फिरि मोहि सिढी बताई।।
अहो ! उत आसा न भई संपूरन इतहि सबै विधि पूरी।
अहो ! गई है ऊपर गिनी न जातही मैन–मुनैया–चूरी।।
अहो ! बिंदु महा विदिसनि सौं कोपि इंद्रावलि बिधि पूरी।
किये हैं मार उलडी हैं गागरि आँधी बंदन दूरी।।
अहो ! कृष्णागरु और अबीर सानि कै गेंदुक सरस सँवारी।
श्रीदामा आदि सखा जे कहियत तिनिकें तकि–तकि मारी।।
अहो। कूदत जित–तित लागत गाहक हलधर बाँह पसारी।
लगे हैं अति सकुमार लाल के कहाँ गई प्रीति तुम्हारी।।

अहो ! हम ऐसौ नहीं खेल खिलैये जो लागै वा तन कौं।
देहु भजाइ यह सैन तिहारी गहिहैं दोऊ जन कौं।।
अहो ! आँकें आइ मिलौ किनि अग्रज ! पूजि आपने मन कौ।
अहो ! तुम तौ कहत ललित वह मूरति जीवन सब ब्रज-जन कौ।।
जेरी निसंक लई ठाले कर पकरि लिए भरि कौरी।
अहो ! गाजि उठ्यौ ब्रजराज–सदन सब ऐसी भाँतिनि दौरी।
मुख मींडत सुबरन पंकनि सौं उर सौं चोबा बोरी।
अहो ! उलहि रहे बादर रँग–रंगनि तैसीय होत है होरी।।
अहो ! उत इक मनोरथ बाके देखि मनोरथ लाजी।
अहो ! जीति हैं रस–रीति कटकवर सुरति छबीली साजी।।
'परमानंद' आनंद–दुंदुभि आइ बगर में बाजी।
दै–दै कूक ब्रज–भूप प्रभृति सब सभा अथाँई भाजी।।

(६) डोल

१२१२ (गौरी)

मदनगोपाल झूलत डोल।
वाम–भाग राधिका बिराजित पहिरें नील निचोल।।
गौरी राग अलापति–गाबति कहति भाँवतौ बोल।
नंदनँदन सौं भलौ मनावति जासौं प्रीति अतोल।।
नीकौ भेष बन्यौ मनमोहन आजु लाइहौं मोल।
बलिहारी या[1] बानिक–ऊपर जगत देऊँ सब ओल।।
अद्‌भुत रंग परस्पर बाढ्यौ आनँद हृदै कलोल।
'परमानंददास' तिहि औसर उडत होलिका झोल।।

१२१३ (देवगंधार)

डोल माई ! झूलत हैं ब्रजनाथ।
सँग सोभित वृषभानु–नंदिनी ललिता बिसाखा साथ।।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ रुज मुरज बहु भाँति।
अति अनुराग भरे मिलि गावत
अति आनंद किलकाँति।।
चोबा–चंदन बूका–बंदन उडत गुलाल अबीर।
'परमानंददास' बलिहारी राजत हैं बल–बीर।।

१२१४ (देवगंधार)

झूलत नवल किसोर–किसोरी।
उत ब्रजभूषन कुँवर रसिकवर इत बृषभानु–नंदिनी गोरी।।
पीतांबर–नीलाबंर फरकत उपमा घन[1]–दामिनि–छबि थोरी।
देखि–देखि फूलति ब्रज–बनिता दूति झुलाइ गहें कर डोरी।।
मुदित भए जु मिले सुर गावत किलकि–किलकि दै उरज–अँकोरी।
'परमानंद' प्रभु मिलि सुख–बिलसत इंदु–बधू इत नैन–चकोरी।।

१२१५ (कल्यान)

डोल चंदन कौ झूलत हलधर–बीर।
बृंदावन अति ही राजत है कालिंदी के तीर।।
गोपी रही अरगजा छिरकति भरें[2] गुलाल–अबीर।
सुर–नर–मुनि सब कौतुक भूले व्योम विमाननि भीर।।
बाम–भाग राधिका बिराजित पहिरें कसूँभी चीर।
'परमानंद' स्वामी सँग झूलति बाढ्यौ रंग सरीर।।

१२१६ (पंचम)

आजु बने मोहन झूलत डोल।
बाम अंग लगि सोहति भामिनि सौभग–सींव अतोल।।
दुहूँ ओर प्रमुदित मन पुलकित ब्रज–बनिता मिलि टोल।
तेल–गुलाल मिलाइ करनि सों मंडित करत कपोल।।
रतन–जटित पिचकारिनि छिरकत केसरि–रंग अमोल।
पंचम राग अलापति–गावति मधुरे–मधुरे बोल।।
सुरंग गुलाल अबीर उडावत चहुँ–दिसि भरि–भरि डोल।
बाढी भक्ति दास 'परमानंद' जग में बाजत ढोल।।

१२१७ (कल्यान)

डोल झूलत नँदनंदन छिकरत चोबा–चंदन।
ललिता-बिसाखा झुलवति ठाढी कर गहि डोल जु कंचन।।
बृंदावन प्रफुलित द्रुम–बेली कोकिल कुंजन हंसन।
नौतन चूत प्रवाल रहे लसि एक लिये ठाढे हैं अंजन।।
अबीर-गुलाल उडावत दुहुँ दिसि लियें भराई भरि-भरि झोरनि।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोपिनि के चित–चोरनि।।

---

१. गगन–दामिनी (ग), २. उडत (अ. ग.)

(७) फूल–मण्डनी

१२१८ (कानरौ)

फूलनि की चोली फूलनि कौ चोलना
फूल माथें हाथें काननि कें फूल।
फूलनि की सेज नीकी फूलनि के चंदबा
फूलनि के बीजना फूल फोंदा फूल।।
फूलनि के गैंदुबा फूलनि के गालमसूरी
फूलनि के जंघा[1] सूई आगें पाछें फूल।
फूलनि के महल फूलनि के चित्र[2] परदा
'परमानंद[3] दास' राधा–माधौ फूल।।

१२१६ (सारंग)

फूल के अठखंभा राजत सँग वृषभानु दुलारी।
मोर–चंद सिर मुकुट बिराजत पीतांबर छबि भारी।।
फूलनि के हार–सिंगार फूलनि के संग सखी सुकुमारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रज–जीवन बलिहारी।।

१२२० (सारंग)

बात कहत रस–रंग उछलता।
फूलनि के महल बिराजत दोऊ
मंद–सुंगध निकट बहै सरिता।।
मुख मिलाइ हँसि देखत दर्पन
सुरति–स्रमित अरु माल–बिगलिता।
'परमानंद' प्रभु–बिबस है
कहें हम में सुंदर को ललिता ?

(८) रामनवमी

१२२१ (सारंग)

माई ! प्रगट भए हैं राम।
सब[4] जंजाल मिटे दसरथ के सुनत मनोहर नाम।।

---

१. जाघ (क) झब्बा सैया०, २. चित्रसारा
३. राधा–माधौ फूले अति फूल, ४. हत्या तौन गई दसरथ की (अ.)

जै जैकार भयौ त्रिभुवन में करत निगम–स्तुति गान।
सुर–नर–मुनि–जन कौतुक आए[1] रघुपति रूप–निधान।।
बंदी–जन सब द्वारें ठाढे संतनि के[2] अभिराम।
'परमानंददास' कौ ठाकुर मोहन पूरन–काम।।

१२२२ (सारंग)

आजु अजोध्या प्रगटे राम।
दसरथ बंस दोउ कुल–दीपक सिव–बिरंचि मन भयौ विस्राम।।
घर–घर तोरन–बंदन–माला मोतिनि–चौक पुरे निज धाम।
'परमानंददास' तिहिं औसर बंदीजन कौ राखत मान।।

१२२३ (सारंग)

आजु सखी रघुनंदन जाए।
सुंदर रूप नैन–भरि देखौं गावत मंगलचारु बधाए।।
परम कुतूहल नगर अजोध्या घर–घर मोतिनि–चौक पुराए।
द्वार–द्वार मारग गिरि पोरे तोरन–कंचन कलस बँधाए।।
पूरन ब्रह्म सनातन कहियतु जे प्रभु वेद–उपनिषद गाए।
महाभाग राजा दसरथ के जिहिं घर राघौ जनमत आए।।
ब्रह्म–घोष मिलि करत बेद–धुनि जै–जै दुंदुभि देव बजाए।
गन–गंधर्ब–चारन जसु बोले भवन चतुर्दस आनँद पाए।।
पान फूल फल चोबा चंदन बहु उपहार लोक लै आए।
'परमानंद' प्रभु मनमोहन कौं कौसल्या–जननी उर लाए।।

१२२४ (सारंग)

आजु अजोध्या मंगलचार।
मंगल कलस–माल–तोरन छबि बंदीजन गावें द्वार।।
दसरथ–कौसल्या जु केकेई बैठै आइ मंदिर –मंझार।
रघुपति भरत सत्रुघन लछमन चारौं धीर उदार।।
एक नाचै एक करत कुलाहल पाइनि नूपुर की झनकार।
'परमानंद' (दास) मनमोहन प्रगटे भुव-असुरनि-संहार।।

१२२५ (आसावरी)

नौमी के दिन नौबत बाजै कौसल्या सुत जायौ।
सात घरी दिन उदित भयौ रवि[3] सखियनि मंगल गायौ।।

---

१. भूले राघव–जन्म (अ) २. मन (अ.), ३. सब (ग)

काँप्यौ सिंधु कँगूरा ढायौ[1] लंका आगम जनायौ।
सब लंका में सोच[2] पर्‌यौ है राज[3] देव–गृह आयौ।।
दसरथ–मन आनंद भयौ है बंस हमारें आयौ।
विप्र बुलाइ सोधनाँ कीनी अभै–भंडार लुटायौ।।
कंचन के बहु कलस बनाए[4] मोतिनि–चौक पुरायौ।
घरी एक निगम सोच हिय भाख्यौ रामचंद्र गृह आयौ।।
गृह–गृह तें सब सखी बुलाईं आनँद–मंगल गायौ।
दसरथराइ दोउ आँगन में आदर करि बैठायौ।।
दसरथ उठि बाजार पधारे सारी सुरंग बसायौ।
जो जाके जैसौ मन भायौ तैसयौ ताहि पहिरायौ।।
पाट–पटंबर खासा'–झीनौ जैसौ जाहि मन–भायौ।
'परमानंद' कहाँ लौं बरनौं तीन लोक जसु गायौ।।

१२२६ **(बिलावल)**

श्रीरघुनाथ पालने झूलें कौसल्या गुन गावै।
बलि–अवतार देव–मुनि–बंदित राजीव–लोचन भावै।।
राजा दसरथ पलना गढाच्यौ नव चंदन कौ साजु।
हीरा–जटित पाट की डोरी रतन–जराए बाजु।।
राते चरन–कमल कर राते नील जलद तन सोहै।
मृगमद–तिलक अलक घुँघरारी मृदुल हास मन मोहै।।
घर–घर उच्छव चारु अजोध्या राघव–जनम–निवास।
गावत-सुनत लोक-त्रय-पावन बलि 'परमानंददास'।।

१२२७ **(विलावल)**

घुँघरू बाजत झनक–झनक।
दसरथ–नंदन–बंदन खेलत आँगन तनक–तनक।।
पीति झगुली हिये हँसुली केहरि नख उपमा नाहीं अनक।
कटि–पट फेरि धरें कर सायक हाथ धनैयाँ–तनक–तनक।।
राम लच्छमन भरत शत्रुघन उपमा कहुँऽब न बनक–बनक।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जानत जननी जनक–जनक।।

---

१. ढरक्यो (अ.), २. सोर (अ.),
३. राजा (अ.), ४. मँगाए (ग.)

१२२८ (दवेगंधार)

राम–मुख देखत नैन आनंद।
सीतल सुभग सकल सुखदाता प्रगटे पूरनचंद।।
बार–बार चितवति वह सीता कुँवरि झरोखा लागी।
पूरव संचित सुकृति रसीलौ लीनौं विधि पें माँगी।।
राजा जनक–सुता वर उन कौं दीनौं धनुष दिखाई।
'परमानँद' प्रभु आनि बाहु–बल लीनौं आपु चढाई।।

१२२६ (देवगंधार)

राम देखियत सुंदर गात।
दसरथ–कौसल्या मन आनँद प्रेम न हृदै समात।।
बदन इंदु राजीव–विलोचन स्रवननि कुंडल लोल।
कुंचित अलक तिलक मृगमद रुचि भ्राजत चारु कपोल।।
बालक–दिसा कंठ मुक्ता–मनि नगस चूडामनि हाथ।
कर–तल बान–धनैया सोभित कुँवर अजोध्या–नाथ।।
विस्वामित्र सकल सब मुनि जन ठाढे देत असीस।
'परमानंद' प्रभु अविचल–कीरति महाराज जगदीस।।

१२३० (मारू)

मानों माई ! सिंधु फिर्‌यो तनयानिति।
चाहत कियौ प्रलय लंक–पुर ता तें उमगि तजी मिति।।
सिंधु अरुन अरु स्याम–पीत सब ज्यौं गज जूथनि डोलत।
बदत न काहू अति मदमाते जै–जै राधौ बोलत।।
चलहु न जाइ कहँहि रावन–प्रवति अचरजु हम पेख्यौ।
मानौं काल साजि सौं दल–बल निधि–उतरत हम देख्यौ।।
'परमानंद' कत रावन ! सुनि अब सिर–ऊपर आई।
तीनहुँ लोक कहुँ ठाहरु नाहीं बिना सरन रघुराई।।

१२३१ (मारू)

जानकी देहु हमारे जाननि।
अनुचर एक लंकपुर जारी उदधि बाँधि पाषाननि।।
कहा कियौ बल–बीर तुम्हारे खर दूषन त्रिसरानन।
अब तुम कहा कियौ चाहत तिल अंजलि दैनि सतानन।।
मंदोदरि कहि बचन सुनावति पिय बूझौ परधाननि।
'परमानँद' जब लगु नहिं कोपें सारँग लै निज पानिनि।।

१२३२ (मारू)

जबहिं सारँगु लैहें रघुनाथ।
सुनि रावन ! सुरपति भव बिधि कहि कौन निवारै हाथ।।
कहा भयौ दस सीस चढाए परस्यौ गिरिजानाथ।
अब फिरि तैं आनन नहिं टरिहें टरहि जु बाननि साथ।
जानकि देहु बिलंबु न लावहु कछू–कछू सब गाथ।
आगें करहु स्यामसुंदर के बिनबहुदीनानाथ •।।

१२३३ (रामग्री)

हौं जानति री अपने पिय की।
सोना की मुँदरी दै पठई अधिक कृपा अब जिय की।।
लै उठाइ हस्त–अंबुज करि लोचन निरखति कंठ लगाई।
बहुत बिचारु कियौ चित–अंतर इहि ऊपरतें कहि छिटकाई।।
बनचर एक राम कौ सेवकु कहहुँ सँदेसऽब पाइनि लागौं।
हौं रघुपति पठयो तो कारन देहि असीस इहै बर मागौं।।
कुसलेइ राम–लछमन दोउ भाई जिनि डरु करहि सुहागिल रानी।
'परमानँद' प्रभु अब सागर–तट दिवस चारि में मिलोंगी आनी।।

१२३४ (रामग्री)

बेगि न सिंधु बाँधहु राघौ ! बहुरि–बहुरु भरिबौ।
सीता–नयन–वारि–बारिधि कैसें कै तरिबौ।।
कितीक बात कोसलपति ! रावन कौ लरिबौ।
इहि तौ हम प्रगट देखी लंका कौ जरिबौ।।
तब प्रताप एक बान रिपु कौ बल हरिबौ।
'परमानंद' कौन सहै पानि धनुष कौ धरिबौ।।

(६) श्रीमहाप्रभुजी

१२३५ (भैरव)

प्रात–समय उठि करिये श्रीलच्छमन –सुत–गान।
प्रगट भये श्रीबल्लभ प्रभु देत भक्तनि दान।।
श्रीविट्ठलेस प्रभु के निधान।
श्रीगिरिधर उदै भयो भान।।
श्रीगोविंद आनँदकंद कहा बरनौं गान।
श्रीबालकृष्ण बाल–केलि रूप ही सुजान।।

• *इसमें 'छाप' नहीं हैं.*

श्रीगोकुलनाथ प्रगट कियौ मारग बखान।
श्रीरघुनाथलाल लाल देखि मनमथ ही लजान।।
श्रीजदुनाथ महाप्रभु पूरन भगवान।
श्रीघनस्याम पूरन–काम पोथी में ध्यान।।
पांडुरंग विट्ठलेस करत वेद–गान।
'परमाननंद' निरखि लीला थके सुर–विमान।।

१२३६ (ईमन)

जै श्रीवल्लभ देव धनी।
रास–विलास करत गोवर्द्धन मूरति ललित बनी।।
पुरुषोत्तम मुख–कमल विकसित रसिकनि–मध्य मनी।
वरन निवेदन दैवि–जीवनि कौं कृपा करी जु घनी।।
श्रीभागवत–सुधा–निधि मथिकें बानी निगम बनी।
लीला–सृष्टि सिन्धु सब पूरित दैवी निज अपनी।।
श्रीविट्ठल प्रगटित 'परमानँद' भजन–प्रचार बनी।
श्रीजमुना–पुलिन–केलि वृंदावन गिरिधर गुनित गुनी।।

१२३७ (विहाग)

सुभग सेज पौढे श्रीबल्लभवर सँग सुख–पौढे श्रीनवनीतप्रिया।
ज्यों जसुमति–सुख नंदनंदन कौ त्यों प्रमुदित मन लाइ हिया।।
हुलरावत दुलरावत गावत अँगुरिनि अंग दिखाइ दिया।
कहत न बनत देखत द्रगननि सौं दुख बिसरत सुख होइ जिया।।
डरत जानि बालक–सँग पौढे हाव–भाव चित–चाव किया।
'परमानंददास' गोपीजन सो जसु गायौ घोष तिया।।

१२३८ (विहाग)

श्रीवल्लभ रतन–जतन करि पायौ।
बह्यौ जात मोहि राखि लियौ है ये सुनि हाथ गहायौ।।
दुःसंग सब दूरि किये हैं चरननि सीस नवायौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नैननि प्रगट दिखायौ।।

(१०) चन्दन–धारण

१२३६ (सारंग)

बन्यो बागौ वामना चंदन कौ।
चंपकली सी पाग बनाई भाल तिलकु बन्यौ बंदन कौ।।

चोली की छबि कहत न आवै ठाँ–ठाँ काछ कुंदन कौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर देव–लोक–मुनि–बंदन कौ।।

१२४० (सारंग)

चंदन पहिरें लाल ललित तन श्रीवृषभानु–किसोरी।
बिच–बिच बंदन कुंकुम की सुभग तिलक कुंडल–कल–जोरी।।
सरस पिछौरा कटि–प्रदेस वर सुमन–माल मुक्ता–लर दोरी !
नैन–कमल दल से सुख पुंजनि पाग भृकुटि छुहिं जगत–ठगोरी।।
गोपीजन देखत सुख पावत वारि फेरि डारत तृन तोरी।
'परमानँद' प्रभु सुखसागर नित आनँद सदा ब्रज–खोरी।।

१२४१ (सारंग)

चंदन पहिरि देखि चित चोर्‍यौ।
चंपक–दाम–बेलि बन–माला सँग राधे–तन गोर्‍यौ।।
तिलक भाल लाल कुमकुम कौ स्रवननि कुंडल जोर्‍यौ।
कोमल कर वर कमल गह्यौ है कटि–पट पीत पिछोर्‍यौ।।
देखत सुर–मुनि सुमन सु झरि कर निरखि मदन–मुख मोर्‍यौ।
'परमानंद–सुख कैसे कहियतु आनँद–सिंधु झकोर्‍यौ।।

१२४२ (सारंग)

चंदन पहिर्‍यौ ऊजरौ अंगनि।
सुंदरस्याम कुँवरि रसिक–मनि राजत हैं दोऊ संगनि।।
पीत पिछौरा कटि–तट बाँध्यौ मोर–चंद्रिका माथें बलकनि।
उर बन–माल गुंजा–बन–माला
कुंडल कर्न दोऊ दिन–मनि झलकनि।।
तिलक–सुरेख लाल भाल पर
नासा मोती मनौं भृगुपति राजत।
'परमानंद' निरखि नँदनंदन तन–मन–धन वारि डारत।।

(११) नृसिंह–चतुर्दशी

१२४३ (बिलावल)

यह व्रत माधौ प्रथमु लियौ।
जे प्रानी[1] भगतनि कौ दुख दैं ता कौ फारौ नखनि हियौ।।

---

१. मेरे

पराधीन हौं अपने भगत कौ जा कारन अवतार धरौ।
मारें दुष्टनि असुर जहाँ लगि अभिमानी कौ गरबु हरौ।।
मेरे[1] भक्त कौ जे कोउ सतावें ते जन मो सौं बैरु करै।
रखवारी कौ चक्र–सुदरसन माथे–ऊपर सदा फिरै।।
भजते भजौ तजों नहिं कबहूँ श्रीपति–मुख तै यौं भाखी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर देव[3] मुनी सब हैं साखी।।

१२४४ **(कान्हरौ)**

हरि राखै ताहि डर का कौ।
महापुरुष समरथ कमला–पति नर–केहरि ईस है जा कौ।।
अनेक सासना करि–करि देखे निष्फल भई खिसाइ रह्यौ।।
ता बालक कौ बार न बाँकौ हरि के सरन प्रहलाद गयौ।।
हिरनकसिपु कौ उदर बिदार्‌यो अभै–रांज प्रहलादै दियौ।
'परमानंद' स्वामी दयालु–चित अपने भक्त कौ नीकौ कियौ।।

१२४५ **(कान्हरौ)**

श्रीनरसिंह भक्त–भय–भंजन रंजन–मन सब सुखकारी।
भूत प्रेत डाकिनी दुरागम जंत्रमंत्र भवभयहारी।।
सबै मंत्र तें अधिक नाँउ जिनि रहत निरंतर उर धारी।
निज जन-सब्द सुनत आनंदित गिरि गए गर्भ दनुज–नारी।।
कोटिक कला दुरासद बिसै महाकाल कौ संहारी।
श्रीनरसिंहं–चरन–पंकज पर जन 'परमानँद' बलिहारी।।

१२४६ **(विलावल)**

पढौ भैया ! राम गोविंद मुरारी।
कहै प्रहलाद सुनो रे बालक ! लीजै जनम सुधारी।।
डर जिनि करौ रहो रे ! दृढ–मति भजन करहु दिन–चारी।
हरि के चरन–कमल आराधौ कबहुँ न आवै हारी।।
हिरनकसिपु को है अभिमानी कहा तुमहिं सकैगौ मारी।
राखन–हारौ है कोउ औरै स्याम–भुजा धरै चारी।।
ब्रह्म–स्वरूप देव नारायन सो राखौ हृदौ बिचारी।
'परमानंद' स्वामी सुख सागर जो दाइक फल चारी•।।

---

१. जो भक्तनि सों बैरु करत हैं सो पुनि, २. सकल भुवन सब
• पद सं० ४२२ पर पाठ–परिवर्तन के साथ सूरसागर में भी

१२४७ (बिलावल)

ऐसौ जन प्रह्लाद उबार्‌यौ।
प्रगटे खंभ फारि कें नरहरि हिरनकसिपु लै नखनि बिडरार्‌यौ।।
लक्ष्मी हरि के निकट न आवति इहि स्वरूप कबहुँ न निहार्‌यौ।
'परमानँददास' कौ ठाकुर भक्त–वचन प्रतिपार्‌यौ।।

(१२) गंगा दशमी

१२४८ (रामकली)

जे जन गंगा–गंगा रटैं।
पातक कोटिक जनम–जनम के ततछिन माँझ कटैं।।
मज्जन कियें होत तन निर्मल आवागमन मिटैं।
'परमानंद' जल–पान किए तैं बसि जमुनासु तटैं।।

१२४६ (विभास)

गंगा तीन लोक–उद्धारक।
ब्रह्म–कमंडलु तैं तुम प्रगटी[1] सकल विस्व[2] की तारक।।
दरसन[3] परसन पान कियें तैं कीने जीव कृतारथ।
'परमानँद' स्वामी के संगम आपुनि भई सुकारथ।।

१२५० (सारंग)

गंगा पतितनि कौं सुख–देंनी।
सेवा करि भागीरथ लाये पाप–काट को छेंनी।।
सकल ब्रह्मांड फोरि कैं निक़सी चलत चाल गज–गैंनी।
'परमानँद' प्रभु चरन–परस तैं भई कमल–दल–नैंनी।।

१२५१ (विभास)

परमेस्वरी देव मुनि–बंदित पावनि देवी गंगे !
वामन–चरन–कमल–वर रंजित सीतल वायु तरंगे।।
मज्जनपान करत जे प्रानी त्रिविध–ताप–दुख–भंगे।
तीरथराज प्रयाग प्रगट भए त्रिवेनी जमुना गिरा जु संगे।।
भागीरथ के सगरे कुल तारे बालमीकि जसु गाये।
तुव प्रताप हरि–भक्त–प्रेम–रस जन 'परमानँद' गाये।।

---

१. निकसी (बं. १५ पु० २), २. पाप की हारक, ३. दरस परस जल

(१३) स्नान–यात्रा

१२५२ (सारंग)

पूरन मास पूरन तिथि गिरिधर स्नान करत मन भायौ।
अति आनँद सौं न्हवावत विट्ठल प्रभु जा विधि बेद बतायौ।।
पून्यौ ज्येष्ठ नक्षत्र ज्येष्ठा अभिषेक भक्त–मन भायौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अति उदार दरसायौ।।

(१४) रथ–यात्रा

१२५३ (मलार)

देखौ माई ! रथ बैठे गिरिधारी।
राजत परम मनोहर सब अँग संग राधिका प्यारी।।
मनि–मानक हीरा–कुंदन खचि डाँडी पाँच प्रवारी।
बिधि–कर रच्यौ विचित्र विधाता अपने हाथ सँवारी।।
गादी सुरँग ताफता सुंदर फबै वाद छबि न्यारी।
छत्र अनूपम हाटक कलसा झूमक–लर मुकता री।।
चपल अस्व द्वै चलत हंस–गति उपजति है छबि भारी।
दिव्य डोर पचरंग पाट की कर गहें कुंज–बिहारी।।
बिहरत ब्रज–बीथिनि बृंदावन गोपीजन मनुहारी।
कुसुमांजलि बरषत सुर–नर–मुनि 'परमानंद' बलिहारी।।

११५४ (मलार)

रथ चढि आवत गिरिधरलाल।
रतन–खचित अरु मनि–मुकताफल नील पद्म की माल।।
बर दुलरी जु मोर–चंद्रिका[1] कुंडल गंड बिसाल।
बसन–पीत परिधान मनोहर बिमल गुंज–बनमाल।।
सोभित सुभग चारु लोचन–मृग मोहत मनमथ–जाल।
झलकत ललित कपोल लोल पर स्रम–जल–बूँद रसाल।।
अमर–नारि अवलोकि रूप–छबि देखि डिगै दिगपाल।
तन–मन–धन बारत 'परमानंद' बिबस भई ब्रज–बाल।।

१२५५ (मलार)

देखौ माई ! रथ चढि जादौपति आवै।
मोर–मुकुट वन–माल पीत–पट नटवर–भेष बनावै।।

---

१. चंदावलि (ग)

गरजत गगन दामिनी चमकति पीत–धुजा– फहरावै।
संख–चक्र बाजत वेद–धुनि सुनि जलधर माथौ नावै।।
नाचत देव मुनि सिव–सनकादिक नारद तुंबुरु गावै।
सकल नैन–लोचनफल दीने जन 'परमानंद' पावै।।

१२५६ (मलार)

देखौ माई ! रथ बैठे गोपाल।
सुंदर बदन अनूप बिराजित उर सोहत बन माल।।
तैसेई घन उनये बहु दिसि तैं गजरत परम रसाल।
यह सुख निरखि–निरखि ब्रज–बनिता वारत मोतिनि माल।।
सुर–विमान सब कौतुक भूले बरषत पुहुपनि आई।
'परमानंददास' कौ ठाकुर सब भक्तनि मन–भाइ।।

१२५७ (मलार)

जसोदा रथ देखनि कों आई।
देखि री ! मेरौ लाल रीझैगौ अब कहा करौं मेरी माई।।
मेरौ ढोटा पलना पौढि ऊझकि–ऊझकि कै रोवै।
अघासुर–बकासुर मारे नैन निरंतर जोवै।।
मूँग चिरोंजी बीज के लडुवा भरि–भरि लीने थाल।
मिस्री पना बोहोत करि लीनें स्वादू आँब रसाल।।
देहरी उलँघत ढोटा गिरि गयौ सो बात मैं जानी।
'परमानँद' रथ बोहोत चलत है कहति नंद जू की रानी।।

(१५) वर्षा (मल्हार)

१२५८ (मलार)

बरसि रे ! सुहाए मेहा ! जो पैं हरि कौ संग पायौ।
भींजनि दै पीतांबर सारी सघन[1] बूँद नीके आयौ।।
ठाढे हँसत राधिका–मोहन राग मलार मुदित ह्वै गायौ।
'परमानँद' प्रभु तरुवर–तर हरि कतर सकल मन–भायौ।।

१२५९ (मलार)

बरसनि लाग्यौ बूँदनि चहुँदिसि ग्वाल हँसत सब दै–दै तारी।
हरि–हलधर देखत बन सोभा छाँह ढूँढत इत–उत पुनि टारी।।

---

१. *नन्हीं–नन्हीं बूँदनि (अ.) बड़ी–बडी बूँदनि (ग.)*

भाजे फिरत बचावत बूँदनि इक रोकत इक देत बिडारी।।
पनवारौ हाथनि 'परमानंद' दौरत निबस्यो आचारी।।

१२६० (मलार)

बूँदनि झर लाग्यौ आँगन में जहाँ–तहाँ
करत कलेऊ दोऊ भैया।
भुवन में आवौ लाल ! संग लियें ग्वाल–बाल
बार–बार कहति जसोदा मैया।।
भींजेंगे बसन–तन खेलिबे कों सब दिन
मेरौ कह्यौ मानि लीजे लैहौं बलैया।
'परमानँद' प्रभु जोइ–जोइ भावै
सोई लीजै पकवान और घैया।।

१२६१ (मलार)

पिय–बिनु लागति बूँद करारी।
दादुर मोर पपैया बोलत कोइल बोलति कारी।।
यह जोर लखावनि आए पहिले क्यों न बिचारी।
'परमानँद' प्रभु तिहारे मिलनि कौ प्रगटी रयनि पुकारी।।

१२६२ (मलार)

देखौ जू ! स्याम बादर की उत कारी घटा सुहाई।
चढि गिरि सिखर रीझि मनमोहन मुरली मधुर बजाई।।
सुनि धुनि स्रवन मुदित छकिहारी अति आतुर उठि धाईं।
'परमानंददास' प्रभु के ढिंग गइयाँ सिमिटि सब आईं।।

१२६३ (मलार)

देखौ माई ! चहुँ दिसि छाए बादर।
समुझि बिचारि लेहु किनि मन में बहुरि फिरौगे निरादर।
निर्मल ताल–तलैया के जल बोलत नीके दादर।
बरषा–ऋतु बिन छाँह न लीजै भोजन–संग बिरादर।।
हरी-हरी भूमि छाँडि कित जैयतु ओट-कदम-तर कादर।
खिसलि परे 'परमानँद' हरि जुरि मिलि बैठे आदर।।

१२६४ (मलार)

आजु ब्रज पर बरषत बरषा सी।
देखत–सुनत अधिक रुचि उपजत तन–मन होत हुलासी।।

आए मेघ चहुँदिसि गरजत विज्जु चमकति चपला सी।
कोकिला सब्द कतर द्रुम–ऊपर नाचत मोर कला सी।।
..... जल–पूरति सर अरझाई।
विरहिनी दास 'परमानँद' धरनी परी मुरझाई।।

१२६५ (मलार)

चलि सखि ! देखनि नंदकिसोर।
श्रीराधिका संग लियें बिहरत रुचिर कुंज बन–खोर।।
उमडी घटा मेघ चहुँदिसि तैं गरजत हैं घनघोर।
तैसिये लहलहाति सौदामिनि पवन चलत अति जोर।।
पीत बसन बन–माला स्याम कैं सारी सुरँग तन गोर।
जुग–जुग केलि करत 'परमानंद' नैन सिरावत मोर।।

(१६) हिंडोरा

१२६६ (गौरी)

हिंडोरें झूलति भामिनि।
राधा–कान्ह[1] बराबर बैठे सरद[2] –सुहाई जामिनि।।
पाँच बरस के स्याम–मनोहर सातबरस की बाला।
कमल–नयन हरि वे मृग नैनी चंचल चारु बिसाला।।
एक भुजा करि डाँडी टेकत एक धरें अस्कंध।
मीठी बातें करत परस्पर उभय प्रेम–अनुबंध।।
लरिकाई में सबहि बनत है कोउ न जानें सूत।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नंदराइ कौ पूत।।

१२६७ (मलार)

गोपी गोविंद–गुन विमल परम हित गावहिं।।
प्रथम मास[3] असाढ आगम गगन घन गंभीर।
लवहि[4] दामिनि दिसा–पूरित अति प्रचंड समीर।।
मोर[5]–चातक बन–कुलाहल मधुर[6] बानी बोल।
गोपाल-बाल निकुंज बिलसत[7] संखा-संग कलोल।।

---

१. स्याम–स्याम (अ.ग.), २. सुखद (ङ. छ)
३. पावस–मास (ख), ४. लसै, ५. हंस
६. वचन अद्‌भुत, ७. विहरत करत कान्ह

बकहि दादुर मुग्ध कोकिल मूढ पावस धीर।
छुद्र नदी अपार उमगी मलिन बसुधा–नीर।।
हरित तृन में चंद–बधू गन अति मनोहर लाग।
बलभद्र–केसौ[1] धेनु चारत नंद के अनुराग।।
कंदरा–गिरि चढे हेला करहिं बाल–विनोद।।
जाइ खोजें वृच्छ–कटोर मक्षिका–मधु–खोज।।
कोऊ बोलहिं पंखि–बानी कोऊ गावहिं गीत।
कोऊ जानें गोप–लीला ब्रह्मगति विपरीत।।
चक्रवाक चकोरचातक हंस सारस मोर।
सारिका[2] सारौ सुआ भृंगी करत चहुँ रोर।।
बाटिका सर[3] मध्य नलिनी मधुप करै मधुपान।
नंद गोकुल कृष्ण पालै अमर पति अभिमान।।
रचि हिंडौरौ धवल बानी कासमीरी खंभ।
हीरा प्रबाली[4] लाल लागे और बहु आरंभ।।
रचे चित्र–विचित्र–चित्रित तीर–धनु–संधान।
राम–रावन–जुद्ध क्रीडत देखता उनमान।।
बहुत गोरस–माट माथन खसित[5] कंकन–चीर।
मल्लिका सिर गुँथी बेनी स्रवन सोभित बीर।।
कनक–बरन सुढार सुंदरि अमी बचन रसाल।
प्रेम–मुदित मुरारि चित धरि गावैं राग मलार।।
होत मंगल घोष घर–घर जहाँ राम अनंत।
बैकुंठनाथ दयाल श्रीपति सोइ श्रीभगवंत।।
सब देव-मुनि-जन हँसत जदुवर प्रनत पूरन काम।
देव–बानी बदत निसि–दिन भक्तजन विश्राम।।
जन्म कर्म असेस महिमा[6] सेस–सारद भाखै।
देवकी[7]–नंदन नाम पावत त्रिविध दुख तैं राखै।।

---

१. के सँग
२. सुआ सारस सरस भृंगी करत चहुँ दिसि, ३. सरोवर (ख)
४. पिरोजा पाँति–मुक्ता और अति, ५. चलित कंकन–हीर
६. लीला (ग), ७. नँद

चरन–अंबुज दिपै नख–मनि चिंतिता अविनास।
मन–कर्म–बचन–सुभाय 'परमानंददास' निवास।।

१२६८ (मल्हार)

लाल प्यारौ झूलत है संकेत ।
सँग झूलति वृषभानु–किसोरी ललिता झोटा देत।।
मुदित परस्पर गावत दोऊ अलापत राग मल्हार।
खसि-खसि परत नील पीतांबर कछुअ न अंग-सँवार।।
उनए मेघ सकल बन राजत अद्‌भुत सोभा देत।
'परमानँद' प्रभु रस में झूलत सखी बलैया लेत।।

१२६९ (सोरठी)

हिंडोरें झूलत गिरिवरधारी।
तट जमुना कौ परम मनोहर संग राधिका प्यारी।।
झूलनि आईं सबै ब्रज सुंदरी षट–दस भूषन सारी।
नाचत–गावत करत कुलाहल देत परस्पर तारी।।
दादुर मोर चकोर पपैया बोलत हैं सुखकारी।
सारस हंस कोकिला कूजत गूँजत हैं अति भारी।।
सुर–मुनि सब मिलि कुसुमनि बरषत मुनिवर छूटी तारी।।
इहि सुख निरखि दास 'परमानंद' तन–मन–धन बलिहारी।।

१२७० (मल्हार)

हिंडोरे झूलनि आई राधा के संग सहेली।
बरन अंबर तन पहिरें मानौ कंचन बेली।।
चहूँ ओर झुलावति–गावति सकुचति रूप–नवेली।
'परमानंददास' कौ ठाकुर लाल भुजा उर झेली।।

१२७१ (जैतश्री)

हिंडोरे माई ! झूलत हैं गिरिधारी।
गौर–स्याम छबि ऐन बिराजत घन–दामिनी उनिहारी।।
मोतिनि–माल बिराजति प्यारी पहिरें कसूँभी सारी।
रमकि–रमकि लेत दोउ झोटा छबि लागति अति भारी।।
लाल मधुर धुनि बेनु बजावत गावति हैं ब्रजनारी।
'परमानँद' प्रभु तुम चिरजीऔ श्रीवृषभानु–दुलारी।।

१२७२ (मालव)

हिंडोरे झूलत रँग–बोरे।
नबल घटा सुहाई थोरी–थोरी बूंदे–बिच नव घन की घोरें।।
कंचन के द्वै खंभ मनोहर डाँडी चार झकोरें।
मालव राग अलापति भामिनि 'परमानंद' तृन तोरें।।

१२७३ (मलार)

हिंडोरे माई ! झूलत गोकुल चंद।
रच्यो है हिंडोरौ श्रीजमुना–तट आवत मंद–सुंगध।।
बाजत ताल मृदंग बेनु–धुनि गावत हैं नँद–नंद।
बोलत मोर पपैया टेरत घन गरजत हैं मंद।।
सावन सुभ दिन है हरियारौ राधारमन आनंद।
सब ब्रज–नारि झुलावति हरषति बढ्यौ प्रेम–गुनसंद।।
श्रीवृषभानु कीरति और जसोमति देखत बाबा नंद।
निरखत सोभा लेत बारनें बलि–बलि 'परमानंद'।।

१२७४ (गौरी)

हिंडौरे झूलत मोहन प्यारौ।
देखि सखी ! लाग्यौ मेरी अँखिनि निमिष न कीजै न्यारौ।।
आजु गई ही नंद–भवन में तहाँ देख्यौ मुख सारौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अँखियनि ही कौ तारौ।।

१२७५ (मलार)

हिंडोरे माई ! झूलें श्रीमदनगोपाल।
पटुली रतन–जटित की बनी है कंचन–खंभ बिसाल।।
झोटा देत परसपर जुव–जन गावत गीत रसाल।
'परमानंद' स्वामी सँग क्रीडत प्रेम–मुदित ब्रज–बाल।।

१२७६ (पूर्वी)

हिंडोरौ माई ! ब्रज के आँगन माच्यौ।
सुर–ब्रह्मादिक कौतुक भूले संकर तांडव नाच्यौ।।
सुक–सनकादिक नारद मुनिवर सब मिलि देखनि आए।
नंदकुमार हिंडोरे झूलत निरखि नैन सुख पाए।।
गोकुल[1] बधू झरोखा झाँकति अपुनौ सरबसु वारे।
'परमानंददास' कौ ठाकुर चित चोर्‍यौ इहि कारे।।

---

१. ब्रज–जुवती अटनं चढि (बं० १३, १)

१२७७ (मलार)

आली री ! सावन–तीज सुहाग।
निरखि बदन–तन हरषि नवेली होत है अनुराग।।
तहाँ लाडिली वृषभानु तनया पास जे सकल सिंगार।
सुरंग तन पचरंग चूनरी केसर–आडि लिलार।।
तैसीय षट्–दस बरस की सखी मिली है एकसार।
चली है वर हिंडोरे झूलनि नंद के दरबार।।
कुरँग–नैनी चंद–बदनी चलति मृगराज–चाल।
बिहँसि मधुरे बोल बोलत करति बहु बिधि ख्याल।।
गवति सावन–गीत प्रमुदित कोकिल–कंठ रसाल।
सब चली चंचल चपला से लोचन मन–हरन नँदलाल।।
झूलत नवलकिसोर–राधा बनी अद्‌भुत जोर।
देत झोटा प्रेम–रस–भरि सहचरी चहुँ ओर।।
लाल गिरिधर रस–भरे रस–केलि–सिंधु–झकोरे।
विहँसि 'परमानंद' चितवत दास जन की ओर।।

१२७८ (मलार)

हिंडोरे झूलें हो माई !
जोरी अद्‌भुत–रूप बिराजित सोभा बरनी न जाई।।
मनि कंचन कौ सुरँग हिंडोरा डाँडी चार सुहाई।
'परमानँद' प्रभु हिंडोरा झूलें गोपी झुलावनि आई।।

१२७९ (मलार)

सरस हिंडोरना माई ! झूलै श्रीमदनगोपाल।।
हरि हिंडोरौ है रच्यो सुंदर जमुना–कूल।
जहाँ बेलि चंपौ केतकी केवरौ और ही फूल।।
निरखि सोभा थकित रही मिटि गयौ मन कौ सूल।
गोपी हरि–सँग झूलही हो ! आनँद–सुख कौ मूल।।
रतन–जटित द्वै खंभ हैं डाँडी प्रवारी लाल।
कंचन कौ मरुवौ बन्यौ पटुली जु सरस रसाल।।
तन कसूँभी चीरा पहिरैं आईं सब ब्रज–बाल।
अँग सजे नवसत भामिनी हो ! दिये तिलक सु भाल।।

पटिला जु खुभी चित्र–विचित्र नैन बने दुकोर।
वक्र भौंह लगाव बेसरि मुख–भरे तंबोर।।
सबै सुंदरि निकसि ठाढीं अपनी–अपनी पौर।
गावतिं राग मलार दोऊ मिलि देति हिंडोर झकोर।।
धनि–धनि जीवन सुफल गोपी करत हँसि सँग केलि।
कृष्ण कहि–कहि नाम उचारति लेति हैं रस झेलि।।
चिरजियौ सखि ! मदनमोहन फूलौ जसोदा–बेलि।
'परमानंद' सु नंदनंदन चरन चित निज मेलि।।

(१७) पवित्रा

१२८० (सारंग)

पवित्रा उच्छब कौ दिन आयौ।
ब्रज–बासिनि मिलि मंगल गायौ स्याम निरखि सचु पायौ।।
इहि बलि जित मोहन आयौ है संतनि के जिय भायौ।
नंद–जसोदा हँसि–हँसि भेटत मोतिनि–चौक पुरायौ।।
सुर–नर मुनि जन देखनि आए ढोल–निसान बजायौ।
'परमानंद' स्वामी की लीला निगमनि अगम बतायौ।।

१२८१ (सारंग)

पवित्रा पहिरें श्रीगिरिवरधारी।
वृषभानु-नंदिनी सँग राजति है अंग-अंग छबि न्यारी।।
हाटक–पुहूप पाट–पचरँग के अरु माला ढिंग सोहै।
निरखत नैन मैन गति थाकी जो देखै सो मोहै।।
सोभा–सिंधु सकल सुख–सींवा माँगत गोद पसारी।
'परमानँद' पहिराइ पवित्रा निरखि थकी व्रज–नारी।।

१२८२ (सारंग)

पवित्रा लाल के कंठ सोहै।
सोने के गेंदा रूपे के गेंदा पचरँग पाट के पोहै।।
अति विचित्र माला वर देखियतु सुर–नर–मुनि–जन मोहै।
'परमानंद' देखि सुख[२] पायौ हृदय हरष दृग जो है।।

---

१. जसोदा रानी मन (अ), २. इहि सोभा जसुदा रानी (ग)

१२८३ (सारंग)

गेंदा गिनती के हैं नीके।
पीरे–राते ऊजरे–भूरे नील कमल से फीके।।
पहिरें परम मनोहर माला जुबती–जन के जी के।
देखत हरषत नैन सिराने लेत बलैयाँ पी के।।
पहिरि पीतांबर पाग मनोहर कुमकुम–तिलक सु नीके।
'परमानंद' भागि तें पइयतु देखत सुख दृग ही कै।।

१२८४ (सारंग)

बठे पहिरि पवित्रा दोऊ निरखत नैन सिराने हो।
राजत रुचिर कुंज–भवन में कोटिक काम लजाने हो।।
रहसि बिलास हरत सबकौ मन अंग–अंग सुख साने हो।
'परमानंद' स्वामी सुख सागर उपजत तान बिताने हो।।

१२८५ (सारंग)

पवित्रा पहिरैं श्रीगिरिधरलाल।
सुंदर–स्याम छबीलौ नागर सकल घोष–प्रतिपाल।।
हठि मन हरत हमारौ मोहन संग नागरीबाल।
फूले फिरत मत्त–बल करनी अति आनँद नँदलाल।।
देखि सरूप ठगी सी ठाढी दंपति दल के साज।
'परमानँद' प्रभु न्योंछावरि करि प्रान–प्रिया के काज।।

१२८६ (सारंग)

पवित्रा पहिरत राजकुमार।
तीनों लोक पवित्र कियें हैं श्रीबिट्ठल गिरिधार।।
अति ही पवित्र पिया बहु बिलसत निरखि मदन भयौ भार।
'परमानंद' पवित्र की माला गोकुल की निजु नार।।

१२८७ (सारंग)

पवित्रा पहिरत श्रीमहाराज।
घर–घर तें सब देखनि आईं नए–नए भूषन–साज।।
जै–जै सब्द बोलें ब्रज–बनिता मंगल गावैं चारु।
'परमानँद' स्वामी की महिमा अगम-निगम जानें पारु।।

(१८) राखी

१२८८ (सारंग)

रच्छा बाँधति जसुदा मैया।
सकल सिंगार साजि भूषन तन गिरिधर–हलधर भैया।।
रतन–कनक[1] राखी बंधन करि फुनि–फुनि लेति बलैया।
सकल भोग आगैं धरि राखे तनक[2] जु लेहु कन्हैया।।
यह छबि देखि मगन नँद–रानी निरखि–निरखि सचु पैया।
जियौ जसोदा ! पूत तिहारौ जन 'परमानंद' गैया।।

१२८९ (सारंग)

राखी–बंधन नंद कराई।
गरगादिक सब रिषिन बुलाए लालहिं तिलक बनाई।।
सब गुरु–जन मिलि देत असीसें चिरजीवौ ब्रजराई।
बडौ प्रताप बढै ढोटा कौ प्रतिदिन–दिनहिं सबाई।।
आनंदे ब्रजराज–जसोदा मानौं अधन निधि पाई।
'परमानंददास' की जीवनि चरन–कमल लपटाई।।

१२९० (सारंग)

सब ग्वालिनि मिलि मंगल गायौ।
राखी बाँधति मात जसोदा मोतिनि–चौक पुरायौ।।
विप्र जु देत असीस सबनि कौं प्रनय करि मंत्र पठायौ।
नंद देत दच्छिना गाँइनि–सँग मंगलचार बधायौ।।
सावन सुदि पून्यौ कौ सुभ दिन रोरी तिलक बनायौ।
पान मिठाई नारिकेल फल सोना हाथ धरायौ।।
नव–भूषन नव बसन जसोदा सबहिनि कौं पहिरायौ।
देत असीस बिरध नर–नारी चिरजियौ जसुमति–जायौ।।
याही भाँति सलौनौ तुम कौं गिरिधर नित–नित आवौ।
जनम–द्यौस नियरौ आयौ है घोष विचित्र बनाऔ।।
ताल किन्नरी ढोल दमामा भेरी मृदंग बजायौ।
लीला जनम–करम हरि जू कें 'परमानंद' जसु गायौ।।

---

१. *खचित राखी बाँधी कर (अ)*
२. *रुचि सौं (ग.)*

१२६१ (सारंग)

अहो ! नँदरानी कौ भाग्य बड़ौ कहाँ लौं बरन्यौं जाई।
तीन भुवन जाके बंधन में तिहिं
हरि सुभग कर राखी बँधाई।।
नाना विधि के भोग बनाए सबै स्वादु रस सौं अधिकाई।
चिरजियौ जसोदा ! पूत तिहारौ
कछुक जूठन 'परमानँद' पाई।।

१२६२ (सारंग)

आबौ मेरै रच्छा बाँधौ लाल !
बरस–द्यौस की कुसल मनावति गोकुल के प्रतिपाल।।
बहुत उपद्रव भयौ या ब्रज में बैरिनि के उर–साल।
'परमानंद' प्रभु तुम चिरजीबौ केसी–कंस के काल।।

१२६३ (सारंग)

लाल कौ रच्छा–बंधन कीजै।
नंद-महर-जसुमति-जीबन कौ आसिस-बचननि दीजै।।
भूसुर मिलि आए हैं महरि कैं करि सनमान बुलाए।
रच्छा–बंधन करि नँदलालै मन–बांछित फल पाए।।
पढि आसीस चले द्विज मंदिर पायौ मन कौ भायौ।
'परमानँद' तहाँ दच्छिना पायौ श्रीगोपालै गायौ।।

१२६४ (सारंग)

रच्छा बाँधति जसोदा मैया।
देति असीस चिरजिऔ मेरे लालन !
चूमति मुख लै लेति बलैया।।
तिलक कियौ रोचन रुचिकारी मिस्री मिठाई पाई।
जो भावै सो मुख में मेलौ पुनि बाबा–ढिंग आई।।
करि बाबा जो–जो तुम अपने
कर दच्छिना विप्रनि कौं दीजै।
'परमानंद' प्रसन्न भए तुम देउ दच्छिना लीजै।।

१२६५ (सारंग)

रच्छा बाँधति जसोदा मैया।
विविध सिंगार साजि नाना रँग बैठे कुँवर कन्हैया।।

आरती करति वारति तन-मन-धन चिरजियौ गोकुल के रैया।
'परमानंददास' कौ ठाकुर मन – आनंद – बढैया।।

१२६६ (सारंग)

राखी बाँधत मदनगोपाल।
सुंदर कर पर फौंदा सोभित मानहुँ झलकत लाल।।
ताके मधि मुक्ताफल राजत उडुगन की जनु माल।
छोटी–छोटी चुनी मनोहर देखियतु परम रसाल।।
बलैया लेति बहिन और फूफी हँसति सकल ब्रजबाल।
'परमानंद' प्रभु सब कछु दीनौं ब्रज-जन के प्रतिपाल।।

१२६७ (सारंग)

राखी बाधत श्रीगिरधारी।
कनक–थार अच्छित कुमकुम धरि हाथ लियैं व्रजनारी।।
मात जसोदा तिलक प्रथम करि तंदुल दिये सुधारी।
अपने कर हरषि दोऊ हाथनि राखी बाँधि सँवारी।।
विप्र सबै मिलि करत वेद–धुनि मंगल सब्द उचारी।
देत दान–दच्छिना बहु रुचि सौं बिबिध रतन मुक्तारी।।
करि आरती निरखि मुख सोभा तन-मन-धन सब वारी।
नंद–कुँबर मनमोहन–छबि पर 'परमानंद' बलिहारी।।

१२६८ (सारंग)

रच्छा–बंधन करत गरग गुरु नंद–महर कैं आए।
नंदराइ कर जोरें ठाढे हरषित होत चरन सिर नाए।।
करत तिलक रोचन कर लीने
कहें नँदलाल बाँधौ कर मेरे !
पढि मंत्र तिलक सिर कीजै रूप–रासि बाबा कर तेरे।।
कीनौं तिलक रच्छा कर बाँधी बहुत प्रसन्न होत है राई।
मुक्ता–माला अति वर सुंदर रच्छा–बंधन–दच्छिना पाई।।
अति प्रसन्न गुरु मन–माहिं हरषे
चिरजीऔ तुम लाल कन्हाई !
दोहरी दच्छिना जसुमति रानी
'परमानँद' सकल सिद्धि पाई।।

(ख) आश्रय और विनय

(१) अपनौ दीनत्व

१२९९ (कान्हरौ)

चरन–कमल बंदौ जगदीस जे गोधन के सँग धाए।
जे पद–कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिनि उर लाए।।
जे पद–कमल युधिष्ठिर–पूजित राजसूय में चलि आए।
जे पद–कमल पितामह भीषम भारत में देखनि पाए।।
जे पद–कमल संभु चतुरानन हृदै कमल–अंतर राखे।
जे पद कमल रमा–उर–भूषन वेद–भागवत मुनि भाखे।।
जे पद–कमल लोक–त्रै–पावन बलि राजा के पीठ धरे।
ते पद–कमल दास 'परमानँद' गावत प्रेम–पीयूष भरे•।।

१३०० (विभास)

बलिहारी पद–कमल की जिनि मँह सत लच्छन।
ध्वजा वज्र अंकुस जव रेखा ध्यान करत विचच्छन।।
ते चिंतन त्रै–ताप हरत सीतल सुख–दाइक।
नख[1]-मनि की चंदिका-ज्योति उज्ज्वल ब्रज–नाइक।।
वृंदावन गो–संग फिरत भूतल–कृत पावन।
गंगादिक तीरथ–प्रसाद भक्तनि के भावन।।
भक्ति धाम कमला–निवास माया–गुन–बाधक।
'परमानँद' ते धन्य जनमु जे सगुन–अराधक।।

१३०१ (विभास)

काहे न सेईये गोकुल–नाइक।
भक्तनि कौ ठाकुर भगवानु सकल सुखनि कौ दाइक।।
ब्रह्मा – महादेव – इंद्रादिक जाके आज्ञाकारी।
सुर–तरु कामधेनु चिंतामनि बरुन–कुबेरु भंडारी।।
औरों नृपति कह्यौ सब मानैं सनमुख बिनती कीजै।
तुम प्रभु अंतरजामी व्यापक दुतिय साखि को[2] दीजै।।

• *सूरसागर पद सं० ११८९ पर भी*

१. कृष्ण कुँवर जसोदा–नंदन सब व्रज के हैं नाइक (छ), २. कहां (घ)

जनमु करम अवतार रूप गुन नारदादि मुनि गावै।
'परमानंददास' श्रीपति जसु अधमु भलें बिसरावै।।

१३०२ (आसावरी)

प्रीति तौ कमलनयन सौं कीजै।
संपति–बिपति परें प्रतिपालै कृपा–अवलोकनि जीजै।।
परम उदार चतुर चिंतामनि सुमिरन सेवा मानैं।
हस्त–कमल की छाया राखै अंतरगत की जानैं।।
वेद[1]–भागवत हीं जसु गायौ कियौ भगत कौ भायौ।
'परमानंद' इंद्र कौ बैभव बिप्र सुदामा पायौ।।

१३०३ (बिलावल)

जब गोविंद[2] कृपा करै तब सब बनि आवै।
सुख–संपति–आनंद घनौ घर–बैठें पावै।।
कुबिजा कहा उद्यम कियौ मथुरा के माली।
इहि चंदन उहि फूल[3] दै अरचे[4] बनमाली।।
बिनु तीरथ[5] बिनु दान–पुन्य बिनु ही तपु कीनें।
पांडव–कुल–हित जानि कैं अपने कर लीनें।।
ऐसी बहुत[6] गोपाल की ता के मुनि साखी।
'परमानँद' प्रभु सभा–माँझि द्रौपदि–पत राखी।।

१३०४ (सारंग)

नाचत हम गोपाल भरोसैं।
गावत बाल–बिनोद कान्ह के नारद के उपदेसैं।।
संतनि कौ सर्बसु सुख–सागर नागर नंदकुमार।
परमकृपालु जसोदा–नंदन जीवन–प्रान–अधार।।
ब्रह्म–रुद्र–इंद्रादि देवता ता कौ करत कैवार[7]।
पुरुषोत्तम तब ही कौ ठाकुर इहि लीला अवतार।।
सरग–नरक कौ अब डरु नाहीं बिधि–निषेध की आस।
चरन–कमल मनु राखि स्याम पें बलि 'परमानँददास'।।

---

१. पुरान–भागवत–गीता गावें करें (घ), २. गोपाल (छ)
३. पुहुप लै (ङ. छ.) पुष्प लै (इ.), ४. चरचे (ङ. छ.), ५. सेवा (च)
६. कृपा गोविन्द (छ) प्रीति गोपाल सों जा के मुनिवर (च)
७. विचार (ग. च.)

१३०५ (सारंग)

हरि कौ भगत मानै डरु का कौ।
जा के कर जोरें ब्रह्मादिक देवता
सब दिन दंड बहुत है जा कौ।।
सिंधु–सखा करि गो–मय कर डरु
वह बिपरीत सुनीं नहिं देखी।
हाथी चढै कूकर[1] की संका इहि धौ कौन पुरानें लेखी।।
सकल लोक अरु निगम–गूढ–मति
कृपा–सिंधु समरथ सब लाइक।
'परमानंददास' कौ ठाकुर दीनानाथ अभय–पद–दाइक।।

१३०६ (सारंग)

जा कों तुम अंगीकार कियौ।
तिनि के कोटि बिघन हरि टारे अभयप्रतापु दियौ।।
बहु सासन दई प्रह्लादै सबहि निसंकु जियौ।
निकसे खंभ–मध्य[2] तैं नर–हरि आपु हि राखि लियौ।।
दुर्बासा अंबरीष कौं सतायौ सो फुनि सरन गयौ।
प्रतिज्ञा राखि मदनमोहन उनहीं पें पठै दियौ।।
मृतक भाइ[3] हरि सबै जिवाए दृष्टि हरि अमृत पियौ।
'परमानंद' भगत–बस केसौ उपमा कौन बियौ•।।

१३०७ (सारंग)

सब सुख सोई लहै जाहि कान्ह पियारौ।
करि सत–संग बिमल जस गावै रहै जगत तें न्यारौ।।
तजि पद-कमल मुक्ति जे चाहे ता कौं दिवस अँध्यारौ।
कहत सुनत फिरत हैं भटकत छाँडि भगति उजियारौ।।
जिनि जगदीस हृदै धरि गुरु–मुख एकौ छिनु न चितारौ।
बिनु भगवंत–भजन 'परमानँद' जनमु जु आयौ हारौ।।

१३०८ (सारंग)

जाकों माधौ करै सहाइ।
हस्त[4] कमल की छाया राखै बार न बाँकौ जाइ।।

---

१. कहा कूकर (छ.), २. फारि (अ), ३. भाय (ग)
• पद सं. ३८ पर सूरसागर में पाठभेद तुक परिवर्तन और साम्य
४. नंदराय के कुँवर लाडिले सब ही के सुखदाइ (ङ छ.)

कंस रिसाइ सचीपति कोप्यौ कैसें नंद दुलराइ।
गल गरजौ गोकुल में बैठे जगत निसान बजाइ।।
जहिं जे बिगरत तहिं ते सँवारत समरथ जादौ राइ।
'परमानंददास' सुख–दाइक राखै सूत बनाइ।।

१३०६ (सारंग)

मदनगोपाल हमारे राम।
धनुष–बान धरि विमल बेनु कर
पीत–बसन अरु घन–तन–स्याम।।
अपनी भुजनि जिनि जल–निधि बाँध्यौ
रास नचाए कोटिक काम।
दस सिर हति[1] सब[2] असुर सँघारे
गोवर्द्धन धार्‌यौ कर बानु।।
तब रघुबर अब जदुबर नागर
लीला–ललित बिमल बहु नाम।
'परमानँद' प्रभु भेद–रहित हरि
निज जन मिलि गावै गुन–ग्राम।।

१३१० (सारंग)

ता तें मोहि तुम्हारौ भरोसौ आवै।
दीनदयाल पतित–पावन–जसु बेद–उपनिषद गावै।।
जो तुम कहौ कौन खल तारे तौ हौं जानौ साखि।
पुत्र–हेत हरि–लोक चल्यौ द्विज सक्यौ न कोऊ राखि।।
गनिका कहा कियौ ब्रत–संजम सुक–हित मनहिं खिलावै।
कारन करि सुमिरै गज बापुरौ ग्राह परम गति पावै।।
कठिन आपदा तें द्विज–पतिनी पति द्वारका हि पठावै।
ऐसौ को ठाकुर जे जन कौं सुख दै भलौ मनावै।
देखे दुखित सुत द्वै कुबेर के तिनि तैं आप बँधाबै।
करुना-नाथ अनाथ-बंधु-बिनु इहि मोहसर[3] को है आवै।।
ऐसे दुष्ट देखि हरि राक्षस दिन प्रति त्रास दिखावै।
सिसु प्रह्लाद प्रगट हित–कारन इंद्र निसान बजावै।।

---

१. हनि (इ. च.), २. अरु (इ.), ३. मौसर कौ पावै

द्रुपद–सुता दुष्ट दुरुजोधन सभा माँहि दुख पावै।
ऐसी करै कौन पै होवै बसन–प्रवाह बहावै[1]।।
बकी गई इहि भाँति घोष में जसोदा की गति दीनी।
जे मति कही सुक प्रगट ब्याधि की प्रभु जैसी तुम कीनी।।
अभय–दान–दावान प्रगट प्रभु साँचौ बिरद बुलावै।
कारन कौन दास 'परमानँद' द्वारे दाद न पावै•।।

१३११ (कानरौ)

बहुतै देबी बहुतै देवा कौन–कौन कौ भलौ मनाऊँ।
हौं आधीन स्यामसुंदर कौ[2] जनम–करम पावन जसु गाऊँ।।
लोक–लोक प्रति सब कोउ ठाकुर
अपनि भगतनि के सुख–दाइक।
मेरे[3] ओरंगो धीर मुरलीधर गोपी–बल्लभ गोकुल–नाइक।।
देव असुर मानव मुनि ज्ञानी
हरि जू कौ दियो सबै कोउ पावै।
हौं बलिहारी दास 'परमानँद' करुना सागर काहे न भावै।।

१३१२ (विलावल)

गोबिंद ! तुम्हारौ सुरूपु निगम नेति-नेति गावै।
भक्तनि–हित स्यामसुँदर देह धरें आवै।।
जोगी जप ध्यान ज्ञान सपनें नहिं पावै।
नंद–घरनि बाँधि–बाँधि कपि ज्यों नचावै।।
गोपी अति प्रेम–आतुर संग लागि डोलैं।
मुरली–नव नाद सुनत गृह तैं बन बोलै।।
स्रुति स्मृति बेद–पुरान सोइ रहे बिचारी।
'परमानँद' प्रेम–कथा सबहिनि तैं न्यारी •।।

१३१३ (आसावरी)

माधौ ! हम उरगानें लोग।
प्रातकाल उठि माथौ नाऊँ उचित पाउँ उपभोग।।

---

१. बढावै (ग. च.)

• पद सं० १२२ पर सूरसागर में भी तुक परिवर्तन तथा विपर्यय व साम्य से

२. कें (छ), ३. हौं (ङ. छ) में

• पाठभेद और परिवर्तन से पद सं० १०१२ पर सूरसागर में भी

दुर्लभ मुगति तुम्हारे घर की संन्यासिनु कौं दीजै।
अपने चरन–कमल की सेवा इतनि कृपा मोहि कीजै।।
जहाँ राखौ[1] तहाँ रहौं चरन–तर परयौ रहौं दरबार।
जा की जूठिनि खाउँ रयनि–दिन ता की करौं किवार।।
जहाँ पठवौ तहाँ जाउँ बिदा लै बुतकारी आधीन।
'परमानंददास' की जीवनि तुम पानी हौं मीन।।

१३१४ **(केदारौ)**

कमल–नयन गोकुल के नाइक।
जा कौ वैभव निगम बखानत
सिव–बिरंचि–इंद्रादिक पाइक।।
सो गाइये सो गावत नौतन
सो पूजिये सो पूजन–लाइक।
सो देखिये सो देखत नीकौ
सो सेइये सो सब सुख–दाइक।।
जा कौऽब रूप बिचारत मुनि–जन
कुंचित केस मदन के साइक।
सोई गोपाल 'परमानंद' स्वामी
गुन–बिचित्र मुरली–कल–गाइक।।

१३१५ **(गौरी)**

माधौ ! परि गई लीक सही।
साँची छाप स्यामसुंदर की आदि अंत निबही।।
जा कौं राजु दियौ सो अबिचलु मुनि भागवत कही।
ध्रुव प्रह्लाद बिभीषन बलि ना संपति सदा रही।।
जो मुख तैं निकसी मधु बानी सो दूसरी नहिं भाखी।
दियौ प्रसाद दास 'परमानँद' देव मनुज–मुनि साखी।।

१३१६ **(सारंग)**

जा के मन बसै[2] स्याम–घन माधौ।
सो सुंदर सो धनी दक्ष सो सोई कुलीन सोई साधौ।।

---

१. गयो तहाँ रह्यो (इ), २. बसे (क. ग. छ.)

सो पंडित सो गुनी पूज्य सोई जो गोपाल कहँ गावै।
कोटि प्रकार धन्य सोई नर जो न हरिहिं बिसरावै।।
सो बड सूर बेद–विद्या रत सो भूपति सो ज्ञानी।
'परमानँद' धन्य सो समरथु जिहिं लाल–चरन–रति मानी।।

१३१७ **(सारंग)**

क्यौं न जाइ ऐसे की सरन।
प्रतिपालै पोषै माता ज्यौं चरन–कमल भवसागर–तरन।।
कठिन अवस्था जानिए जा की
प्रगट जगत–गुरु कियौ सहाइ।
उग्रसेन हठि कियो जादौपति दीनौं राज निसान बजाइ।।
नंदादिक ब्रजबासी जेते गोपी–ग्वाल कियौ प्रतिपाल।।
इंद्र–कोप तैं गिरि धरि राख्यौ
भक्त–बछल दुख–हरन गोपाल।।
ऐसौ ठाकुर त्रिभुवन मोहै[1] जैसे माधौ दीनदयाल।
'परमानंददास' कौ[2] ठाकुर केसी-मर्दन कंस-कुल-काल।।

१३१८ **(गौरी)**

पद्म धर्‌यौ जिन[3] ताप–निवारन।
चारि भुजा चारि आयुध लै[4] नारायन भू–भार–उतारन।।
चक्र–सुदर्सन धर्‌यौ कमल–कर भगतनि के रच्छा के कारन।
संख धर्‌यौ रिपु हृदै विदारन गदा धरी है दुष्ट–सँघारन।।
दीनानाथ दयाल जगत–गुरु आरति–हरन भक्तनि–चिंतामनि।
'परमानंददास' कौ ठाकुर भूतल–काज करे भगतनि पनि।।

१३१९ **(सारंग)**

जाहि बिसंभरु दाहिनौ सो काहे न गावै।
कुबिजा ते कमला करी हरि ऊ चितु पावै।।
इहि रस राधा चाखि कें पॉइ लागि मनावै।
सो गोपाल त्रिभुवन धनी[5] घर बैठे पावै।।

---

१. को है (ङ. च. छ.), २. की जीवनि (ग. ङ. छ)
३. जन (ग.), ४. धरे (छ)
५. पति (च)

अपने करम साझे[२] नहीं जो श्रीपति मानी।
'परमानंद' अंतर दसा जग जीवन जानी।।

१३२० (सारंग)

ते भुज माधौ ! कहाँ दुराए ?
ते भुज प्रगट करहु किनि नरहरि
जन कलि–जुग महँ बहुत सताए।।
जेहि भुज गिरि–मंदरु उत्पाट्यौ
जेहि भुज–बल रावन सिर तोरे।
जेहि भुज–बल बलि–बंधन कीनौं
अपने काज सँकुचि भए थारे।।
जेहि भुज हिरनकसिपु उर फाट्यौ
जेहि भुज प्रह्लादहि बरु दीनों।
जेहि भुज अर्जुन के हय हाँके
जेहि भुज लीला भारथ[३] कीनों।।
जेहि भुज–बल गोवर्द्धन राख्यौ
जेहि भुज–बल कमला घर आनी।
जेहि भुज कंसादिक रिपु मारे
'परमानंद' प्रभु सारँग–पानी।।

१३२१ (सारंग)

तुम तजि कौन नृपति पैं जाऊँ।
का के द्वार पैठि[३] सिर नाऊँ पर हथ कहाँ बिकाऊँ।।
तुम कमलापति त्रिभुवन–नाइक बिसंभर जाकौ नाऊँ।
सुर–तरु कामधेनु चिंतामनि सकल[४] भुवन जा कौ ठाऊँ।।
तुम तैं को दाता[५] को समरथ जा के दिए अघाऊँ।
'परमानंद'[६] हरि–सागर तजि कैं नदी–सरन कत आऊँ[७]•

१३२२ (कानरौ)

मोहि भावै देवाधिदेवा।
सुंदर–स्याम कमल–दल–लोचन गोकुल–नाथ एकमेवा।

---

१. साझौ, २. भारत (इ. ङ. च.), ३. जाइ (घ), ४. अखिल (घ)
५. समान अब नहिं कोऊ दूजौ, ६. 'परमानंद' सिंधु–हरि परसे (घ), ७.जाऊँ
• पद सं. १६४ पर सूरसागर में भी

तीन देवता मुख्य देवता ब्रह्मा विष्णु अरु महादेवा।
जे जनिये सकल बर–दाइक गुन–बिचित्र कीजिये सेवा।।
संख चक्र सारंग गदा–धर रूप चतरभुज आनंदकंदा।
गोपीनाथ राधिका–बल्लभ ताहि उपासत 'परमानंदा'।।

१३२३ **(कानरौ)**

बलि–बलि माधव–स्याम सरीर !
पुरुषारथ ब्रह्मादि बिचारत जै–जै–जै– जै बलभद्र–बीर।।
नंदादिक बल्लव ब्रज–वासी जानतु है हरि सब की पीर।
स्रक –मान खंडन करि श्रीपति गोवर्द्धन उद्धरन–धीर।।
बाजत बेनु राधिका–बल्लभ कछु आस नहीं बरषत नीर।
'परमानंद' प्रभु सब विधि समरथ
विपुल बिनोद गहें कर चीर।।

१३२४ **(धनाश्री)**

बड़ी है कमलापति की ओट•।
सरन गएँ ते पकरि न आये कियौ कृपा कौ कोट।।
जा की सभा एक–रस बैठत कौन बड़ौ को छोट।
सुमिरत नाम अघै–भव–भंजन कहा पंडित कहा बोट।।
जद्यपि काल बली अति समरथ नाहिंन ता की चोट।
'परमानँद' प्रभु पारस–परस ते लोह कनक नहिं खोट।।

१३२५ **(कान्हरौ)**

माधौ ! तुम्हारी कृपा तैं को को न बढ्यौ ?
मन–क्रम–वचन नाउँ जिनि लीनौं
ऊँची पदई[1] सोई चढ्यौ।।
तुम जाहि जमलु[2] दियो जग–जीवन !
सो पुरान कुतर्क कढ्यौ।
गनिका व्याध अजामिल गजेंन्द्र
तिननु कहा हौ बेद पढ्यौ।।

• *'बड़ी है राम–नाम की ओट' इस तुक से पद सं० २३२ पर सूरसागर में भी संक्षिप्त रूप, पाठ भेद और परिवर्तन से।*

१. *पदवीर (ग. छ)*

२. *जमलो (इ.) जिहि मेलौ (ङ छ.)*

ध्रुव प्रह्लाद भगत हैं जेते
तिनि कौ निसान बाज्यौ बिनु ही मढ्यौ।
'परमानंद' प्रभु भगत–बच्छल हरि
इहै जानि जिय नामु झिढ्यौ[1]।।

१३२६ **(धनाश्री)**

रसिक–सिरोमनि प्रेम–भगति–बस[2]
आपु बँधाइ[3] लाल औरनि छोरत।
ऐसे प्रभु कौ छाँडि कुमति अनतहिं[4] दौरत।।
परम कृपाल गोपाल–बालक[5] कटि ऊखल डोरत।
ऋषि–जन–वचन–प्रमान किए सुर सुनतहि बहोरत।।
निगम–गूढ हरि प्रगट भए दधि माखन चोरत।
'परमानंद' प्रभु गृह–गृह डोलत भाजन फोरत।।

१३२७ **(सारंग)**

तुम तजि कौन सनेही कीजै।
सदा एक रस को निबहतु है जा की चरन–रज लीजै।।
इहि न होइ अपनी जननी तें पिता करत नहिं ऐसी।
बंधु सहोदर तेउ न करत हैं मदन–गोपाल करत हैं जैसी।।
सुख अरु लोक देत हैं ब्रजपति
अरु बृंदावन–बास बसावत।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नारदादि पावन जसु गावत।।

१३२८ **(कल्यान)**

माधौ ! इह धर अधिक धरी।
स्रवन–कथा[6] कौं लीला कीनौ मरजादा न टरी।।
जो गोपिनि कौं बिरह न होतौ अरु भागवत[7] पुरान।
तौ सब औघड–पंथी होते कथत रमैया–ज्ञान।।
बारह बरस के होत दिगंबर ज्ञान'हीन संन्यासी[8]।
खान–पान घर–घर सबहिनि कें राख लगाइ उदासी[9]।।

---

१. *दृढ्यो (इ. ग.), २. हित (इ.), ३. बँधाए (इ. छ. च.)*
४. *बहुत (इ), ५. बाल (क)*
६. *कथन (ङ. छ.), ७. भागौत (ङ. छ)*
८. *संन्यास (ख.), ९. उदास (ख.)*

पाखँड–दंभ बढ्यौ कलिजुग में सुद्ध धरम भयौ लोप।
'परमानंद' बेद पढि बिगस्यौ का पर कीजै कोप।।

१३२६ (टोडी)

कमल–नयन कमलापति त्रिभुवननाथ।
एक प्रेम तै सब बनै जो मन होइ हाथ।।
सकल लोक की संपदा जो आगें धरिए।
भक्ति–बिना मानें नहीं जो कोटिक करिए।।
दास कहावत कठिन है जौ लौं चित–राग।
'परमानंद' प्रभु साँवरौ पैयतु बड भाग।।

१३३० (कल्यान)

साँचौ दीवान है री ! मेरौ कमल–नयन।
तू मेरौ ठाकुर तू जदुनंदन जगत–जीवन।।
जाके छत्र अकास सिंघासन वसुधा अनुचर सहस्र अठासी।
सेवक चपरि ता ही कों मारत जे हठि होत मवासी।।
जा के ब्रह्म बजीर सखा उमापति सुरपति पान खवावै।
नारद–तुम्बरु[1] कीरति गावै मारुत चमर ढुरावै।।
जा के कमला सी दासी पाइ पलोटै रिधि–सिधि द्वार बुहारै।
दफतर लिखै सारदा–गनपति रवि–ससि न्याउ निवारै।।
जा के बंदी बेद पुकारत द्वारें मोंहों लौं कोउ न पावै।
ताहि निहाल करै 'परमानँद' नेकु मौज जो आवै।।

१३३१ (विलावल)

ता तैं ना कछु माँगिहौं रहौं जिय जानि।
मन-कलपित कोटिक करै उदधि-लहर समानि।।
बिनु माँगे ही आपदा आवै भर–पूरि।
ता ठाकुर कों[2] संपदा कहौ केतिक दूरि।
जे–जे देव आराधिये सो हरि के भिखारी।
माँगि दिये कत सेइयें बिगरैं उपकारी।।
सो ठाकुर कत सेइये माँगनि लौं राखै।
माँगे जन–पद जात है 'परमानँद' भाखै।।

---

१. सुक अरु व्यास विभीषन सोई कीरति गावै (इ.), २. कें (ग. ङ.)

१३३२ (सारंग)

गई न आस पापिनी दहै।
तजि सेवा वैकुंठनाथ की नीच लोग के संग रहै।।
जिनकौ मुख देखे दुख लागत तिनसौं राना–राइ कहै।
फिरि मंद मूढ अधम अभिमानी
आसा लगै दुरबचन सहै।।
नँहिन कृपा स्यामसुंदर की अपने खांगे[1] जात बहै।
'परमानँद' प्रभु सब सुख–दाता
गुन बिचारि नहिं नेमु गहै।।

१३३३ (सारंग)

ता तैं दसधा भक्ति भली।
जिन–जिन कीनी तिन के मन तैं नैकुं न अनत चली।।
स्रवन पीरक्षित तरे राजरिषि कीरति करि सुकदेव।
सुमिरन करि प्रह्लाद निरभै भयौ कमला करी पद सेव।।
पृथु अरचन सुफलक–सुत बंदन दास–भाव हनुमंत।
सखा–भाव अर्जुन बस कीने श्रीहरि श्रीभगवंत।।
बलि आतमा–समर्पन कीनौ हरि राखे अपने पास।
अविरल प्रेम भयौ गोपिनि कौ बलि 'परमानँददास'।।

१३३४ (सारंग)

जा कौ कृपा कटाच्छ करैं श्रीवृंदावन–नाथ।
बरन–हीन अहीरिनी खेलैं मिलि साथ।
नाभि–सरोज बिरंचि कौ हुतौ जनम–अस्थान।
बच्छ–हरन अपराध ते[2] कीनौं गत–मान।।
मारकंडेय तैं को बडौ मुनि ज्ञान–प्रवीन।
माया–उदधि–तरंग में कीनौं मति–लीन।।
कहौ तपसा[3] कोनै करी संकर की नाँई।
जीते मन सँग–सँग फिरे मोहिनी के ताँई।।
गनिका कें कहा कुल हुतौ कहा गज के आचार।
कौन वैभौ स्रुतदेव कै गवन कियौ हरिद्वार।।

---

१. स्वाँगे (छ.), २. तेहि (इ. च.) ३. तपस्या (इ)

जां कोऊ कोटिक करै बुधि–बल–जंजाल।
'परमानँद' प्रभु साँवरौ दीननि कौ दयाल।।

१२३५ (सारंग)

माधौ ! संगति पोच[1] हमारी।
स्वारथ मीत मिले बहुतेरे एक आधार तुम्हारी।।
इहि तो लाज तुमहिं कमलापति ! जो हमारी पत जाई।
जद्यपि पांखडे जो आराधत ता दिन नाम–सगाई।।
व्याध गीध गनिका अरु पूतना बिगरी बात सँवारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर औगुन कौ गुनकारी।।

१२३६ (सारंग)

हरि के भजन कौ कहा चहियत है
स्रवन नैन रसना पद पानि।
ऐसी संपति आनि बनी है
नाहीं[2] भजत ताहि बड़ी हानि।।
पूरव–जनम–सुकृत–फल पायौ अति पवित्र मनुषा–अवतार।
पाप–पुन्य जा तैं चीन्ह परत हैं
उपजत ब्रह्म–ज्ञान अति सार।।
गुरु कौ निहारि पोत–पद–अंबुज
भव–सागर तरिबे कौ हेतु।
प्रेरक पवन कृपा केसौ की परमानंददास' चित चेतु।।

१२३७ (सोरठी)

मैं मन बहुत भाँत समुझायौ।
मदनमोहन की सेवा न कीनी ता तैं बहुत दुख पायौ।।
भज्यौ नहीं भगवंत भली फिरि पर दारा चितु लायौ।
हर्‌यौ पर–धन पर–निंदा कीनी बिषै परम विषु खायौ।।
उदर भर्‌यौ अपने कुनवा कौ
हरि–दासनि कछू न जिंवायौ।
जमदूत जब मारनि लागे कोऊ न आडौ आयौ।।
थाके नैन बैन सब थाके थाकी सुंदर कायौ।
लाठी लैनि चलनि जब लाग्यौ तृष्णा तउ न अघायौ।।

---

१. चोप (ग), २. जेइ न भजें (इ. ग. च)

किये करम अपनें सब भुगते दुख कौ अंत न आयौ।
परमानँद' प्रभु कृष्ण–कृपा–बिनु ऊँचे सिर छिटकायौ•।।

१३३८ (सारंग)

सेवा मदनगोपाल की मुगति हू तें मीठी।
जानें रसिक उपासिका सुक–मुख जिनि दीठी।।
चरन–कमल–रज मन बसी सब धर्म बहाए।
स्रवन कथन चिंतन बढ्यौ पावन गुन गाए।।
वेद–पुरान निरूपि कैं रस लियौ निचोइ।
पान करत आनँद भयौ डार्यौ सब छोइ।।
'परमानंद' बिचारि कैं परमारथ साध्यौ।
रामकृष्ण–पद–प्रेम बढ्यौ लीला–रस बाँध्यौ।।

१३३९ (टोडी)

जा पर कमला–कंत ढरै।
लकरी घास कौ बेचनिहारौ ता सिर छत्र धरै।।
विद्यानाथ अविद्या–समरथ जो कछु चहै सो करै।
रीते भरै भरै फिरि ढोरै जो चाहै तौ फेरि भरे।।
सिद्ध पुरुष अविनासी समरथ काहू तैं न डरै।
'परमानंद' देइ मन–संपति या तैं कछु न टरै।।

१३४० (टोडी)

कियौ गोपाल कौ सब होइ।
जो मानै पुरुषारथ अपनौ अति सै झूँठौ सोइ।।
सुख-दुख लाभ-अलाभ सहज गति ताहि न मरिये रोइ।
जो कछु लेख लिख्यौ नँदनंदन मेटि सकै नहिं कोइ।।
साधन मंत्र जंत्र उद्यम बल यह सब डारौ धोइ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर चरन–कमल चित पोइ।।

१३४१ (टोडी)

तुम्हारे चरन–कमल कौ महातम।
सिव जानैं कै गौतम नारि।
जटाजूट में पावन गंगा अजुहूँ लियै बहत त्रिपुरारि।।

• *पद सं० २५०७ सूरसागर में भी*

कै जानै लच्छमी महामति कै जानै वसुमती कुमारि।
कै जानै नारद मुनि ज्ञानी
गावत फिरत तिहुँ लोक–मँझारि।।
कै जानै नृग नृपति कूप में ततछिनु तार्‌यौ देव मुरारि।
कै जानै व्याध अधम गति चढि बिमान गयौ देव–दुवारि।।
कै जानै विक्रम महाबली सरबसु दै मेटी कुल–गारि।
कै जानै 'दास परमानंद' जा के हृदै बसै भुज–चारि।।

१३४२ **(धनाश्री)**

रे मन ! सुनि पुरान कहा कीनौ।
अनपाइनी भक्ति न उपजी भूखे दान न दीनौं।।
काम न बिसर्‌यौ क्रोध न बिसर्‌यौ लोभ न बिसर्‌यौ देवा।
पर–निंदा मुख तौ नहिं बिसरी निफल भई सब सेवा।।
बाट–परी घर मूसि परायौ पेट भर्‌यौ अपराधी।
परलोक जाइगौ जातें सोई सोई अविद्या साधी।।
चरन–कमल–अनुराग न उपज्यौ भूत–दया नहिं पाली।

१३४३ **(टोडी)**

• औरंगो माधौ जानराई।
जा के घर की आदि ठकुराई तोंहि बहुत संतनि परभाई।।
जा के दिएँ बहुरि नहि जाचौ दुख–दारिद नहिं जानै।
बारंबार सँभार न भूलै सुमिरन – सेवा मानै।।
पारथ–सूत दूत पांडव के उग्रसेन–अधिकारी।
'परमारथ' कौ ठाकुर गोपिनि कौ हितकारी।।

१३४४ **(बिलावल)**

माधौ ! इह प्रसाद हौं पाऊँ।
तव भृत–भृत्य–भृत्य परिचारक दास कौ दास कहाऊँ।।
इह परमारथ गुरु मोहि सिखायौ स्याम–धाम की पूजा।
इह बासना घटै न कबहूँ देव न देखौ[1] दूजा।।
'परमानंददास' तुम ठाकुर इह नातौ जिनि टूटै।
नंदकिसोर[2] जसोदा–नंदन हिलि–मिलि प्रीति न छूटै।।

• और माँगौ० (ग.) से भी प्रारम्भ, १. देख्यो (छ.), २ कुमार (ग. छ)

१३४५ (सारंग)

आँधरे की दई चरावै।
जा कौ कितहू ठौर नहीं सो तुमरी सरनागति आवै।।
गंगा मिलै सकल जन-पावन लोक-वेद-गुन सब बिसरावै।।
स्वपच बलिष्ठ होइ 'परमानँद' ऐसौ ठाकुर काहि न भावै।।

१३४६ (धनाश्री)

तन–मन जुगल–नयन पर वारौं।
कुंज–रंध्र गौर–स्याम–छबि बारंबार निहारौं।।
अपनी टहल कृपा करि दीजै ता सँग जीव–उधारौं।
'परमानंद' जु लाभ–भजन–बिनु काज सबै लै जारौं।।

१३४७ (रामकली)

ऐसी बिषै–विष–पान सौं प्रीति मेरी।
कहत ही सुनत गोविंद गुन रटत नहीं
दुअ दुवास नारदै कै री।।
काल–गति देह–गति गृह कहँ तजत नहिं
देह–रोगादि दुख–सुख–ढेरी।
भूलि वन भौ परौ पार पान नहिं अरझि
नख–सिख रही कमी जेरी।।
चोर बटमार भुज रोकि दुहुँ दिसि रहे
बोल–बोलत फिरत लेट लै घेरी।
जाउँ जिहिं ओर तिहिं ठौर कहुँ कुसल नहिं
आनत नहीं मपाननु सेरी।।
टेरि भुज ऊँच करि राधिका रवन सौं
दूरि मोतें रही भक्ति तेरी।
'दासपरमानंद' ए हाल ऐसे भए
ऐसे सत–संग बिनु बूडि बेरी।।

१३४८ (कान्हरौ)

आए मोरें नंदनँदन के प्यारे।
माला तिलक मनोहर बानौ त्रिभुवन के उजियारे।।
का जानौं कहा पुन्य उदय भए मेरे घर जु पधारे।
हृदय–कमल के मध्य बिराजत श्रीब्रजराज–दुलारे।।

प्रेम–सहित उर बसत निरंतर नेंकहु टरत न टारे।
'परमानंद' करी न्योंछावरि बार–बार हौं जाऊँ बारे।।

१३४६ (कान्हरौ)

यह माँगों जसोदा–नंदन !
चरन–कमल मेरौ मन–मधुकर या छबि नैननि पाऊँ दरसन।।
चरन–कमल की सेवा दीजै
दोउ तन राजत बिज्जु–लता–घन।
नंदनँदन वृषभानु–नंदिनी मेरे सरबसु प्रान–जीवन–धन।।
ब्रज बसिबौ जमुना–जल अचिबौ
श्रीबल्लभ कौ दास इहै पन।
महाप्रसाद पाऊँ हरि–गुन गाऊँ
'परमानंददास' दासी–जन।।

१३५० (कान्हरौ)

यह माँगों गोपी–जन–बल्लभ !
मानुस–जनम और हरि–सेवा
ब्रज–बसिबौ दीजै मोहि सुल्लभ।।
श्रीबल्लभ–कुल कौ हौं चेरौ
बैष्णवजन कौ दास कहाऊँ।
श्रीजमुना–जल नित–प्रति न्हाऊँ
मन–बच–कर्म कृष्ण–गुन गाऊँ।।
श्रीमद्भागवत स्रवन सुनौ नित
इन तजि चित कहुँ अनत न लाऊँ।
'परमानंद' इहि माँगत नित–नित
निरखौं हौं कबहूँ न अघाऊँ।।

१३५१ (विलावल)

यह माँगों संकरषन–बीर।
चरन–कमल–अनुराग निरंतर भावत है भगतनि की भीर।।
संग देहु तौ हरि–दासनि[1] कौ बास देहु तौ जमुना–तीर।
भक्ति देहु तौ स्रवन–कथा रुचि ध्यान देहु तौ स्याम–सरीर।।
इह बासना घटौ जिनि निसि दिन मज्जन पान सुरसरी–नीर।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोकुल–मंडन[2] सब बिधि धीर।।

---

१. भगतनि (इ. ग.), २. नाइक (अ.)

१३५२ (सारंग)

अनुग्रह तौ मानौं गोबिंद।
बारक चरन–कमल दिखरावहु बृंदावन के चंद।।
नीके सौं नीकौ सब कोऊ सुनु प्रभु आनँद–कंद।
पतितनि देत प्रसाद कृपा करि सोई ठाकुर नँद–नँद।।
अपराधी आदरै न कोऊ अधम नीच मतिमंद।
ताकौं तुम परसिद्ध पुरुषोत्तम गावै 'परमानंद'।।

१३५३ (धनाश्री)

कबहूँ करिहौ धौं दाया।
हस्त–कमल की हमहूँ ऊपर फिरि जैहौ[1] छाया।।
जिहि प्रसाद गोकुल प्रतिपाल्यौ कर–तल अद्रि उचायौ।।
जिहि कर–अंबुज परसि चारु कुच राधाहि भलौ मनायौ।।
जिहि कर–कमल बाल–लीला–रस धेनुक दैत्य फिरायौ।
जिहि कर–कमल मात जसोदा पै माखन–लोंदी खायौ।।
जिहि कर–कमल कोपि झूँटें[2] धरि भूतल कंस गिरायौ।
तिहि[3] कर-कमल दास 'परमानंद' सुमिरत इहि दिन आयौ।।

१३५४ (टोडी)

• अपने चरन-कमल कौ मधुकर मोहू काहे[4] न करहू जू।
कृपावंत भगवंत गुसाँई ! इहि बिनती चित धरहू जू।।
सीतल आतपत्र की छाया कर–अंबुज सुखकारी।
पद्म[5] प्रवाल नयन रतनारे[6] कृपा–कटाक्ष मुरारी।।
'परमानंददास' रस–लोभी भाग्य–बिना क्यों[7] पावै।
जा[8] कौं द्रवत रमापति स्वामी सो दुख निकटन आवै।।

(२) नाम–माहात्म्य

१३५५ (भैरव)

मंगल माधौ–नाम उचार।
मंगल बदन कमल–कर मंगल मंगल जन की सदा सँभार।।

---

१. जैहै (छ.), २. जूडै (छ.), ३. जिहि (क.) तिहारे० (ग.) से भी प्रारंभ
४. कबहुँ करौगे, धरौगे (ग.), ५. प्रेम (ग.), ६. अनियारे (ग.), ७. को (ग.)
८. तापर कृपा करत नंदनंदन ताहिं सबै बनि आवै (ग)

देखत मंगल पूजत मंगल गावत मंगल चरति उदार।
मंगल स्रवन कथा सुनि मंगल मंगल तनु बसुदेव–कुमार।।
गोकुल मंगल मधुवन मंगल मंगल चरति[1] वृंदावन–चंद।
मंगल कर्म[2] गोवर्द्धन–धारी मंगल भेष जसोदा–नंद।।
मंगल धेनु–रेनु सुचि[3] मंगल मंगल मधुर बजावत बेनु।
मंगल गोप–बधू–परिरंभन मंगल कालिंदी–पय–फेनु।।
मंगल चरन–कमल सुर बंदित मंगल कीरति जगत–निवास।
मंगल ध्यान–विचारित अनुदिन मंगल मति[4] परमानँददास'

१३५६ (भैरव)

प्रात समै उठि हरि नाँउ लीजै
आनँद सो[5] सुख में दिन जाइ।
चक्रपानि[6] करुना[7] कौ सागर विघन–विनासन जादौराइ।।
कलि–मल–हरन तरन–भव–सागर भक्त–चिंतामनि काम–धेनु।
ऐसें[8] सुमिरत नाँउ कृष्ण कौ बंदनीक पावन पद–रेनु।।
सिव–विरंचि–इंद्रादि देवता मुनिजन करत नाम की आस।
भक्त–बछल ऐसौ नाम कल्प द्रुम वरदाइक 'परमानँददास'।।

१३५७ गौरी

हरि जू कौ नाम सदा सुख–दाता।
करौ जु प्रीति निश्चल मेरे मन ! आनँद–मूल–विधाता।।
जाके सरन गए भय नाँही सकल बात कौ ज्ञाता।
'परमानंददास' कौ ठाकुर संकरषन कौ भ्राता।।

१३५८ (बिहाग)

जो पै श्रीनंदनंदन–गुन–गुन गाऊँ।
मुख सौं रटत रहौं निसि–बासर
जो कहुँ स्रवन कथा सुनि पाऊँ।।
कर सौं सेवा करौं तन–मन–धन सरबसु जग बिसराऊँ।
निरखत उर में यही सदा रट पद–रज–वास बसाऊँ।।

---

१. रचित (ख.), २. करन (छ.), ३. भुवि (ख.), ४. मन (ग.)
५. में (क.) ही (ग. ङ.), ६. मोहनलाल (छ.)
७. करुनामय केसौ (इ), ८. ऐसौ सुमिरन (क.)

नवधा भक्ति इंद्रि दस अर्पित प्रेम प्रगट सरसाऊँ।
'परमानँददास' कौ ठाकुर नवनीत चैरौ सदा कहाऊँ।।

१३५६ **(सारंग)**

जो जन हिरदै नाऊँ धरै।
अष्ट–सिद्धि नौ–निधि को बपुरी लटकत लार फिरै।।
ब्रह्मलोक सिवलोक इंद्रलोक सब हू तै उपरै।
जो न पत्याहु तौ चितवौ ध्रुवतन टार्‌यौ हू न टरै।।
सुंदर–स्याम कमल–दल–लोचन सब दुख दूरि करै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर वाचा तैं न टरै।।

१३६० **(बिलावल)**

काम–धेनु हरि–नाउँ लियौ।
मन–क्रम–बचन की कौन संपति कहै
महा पतित द्विज अभै दियौ।।
कौन नृपति की हुती कुल–बधू
गनिका कौ कहा पवित्र हियौ।
जज्ञ–जोग को किये महा नृग कौन बेद गज–ग्राह कियौ।।
द्रुपद सुता दीन हरि सुमिरे
नृपति नगन बपु कर न छियौ।
असुर त्रास त्रैलोक्य–सुसंकित सुत कौ काहे न पोच कियौ।
भव–जल–ब्याधि असाध्य रोग कौ
जप–तप–ब्रत औषध न दियौ।
गुरु–प्रसाद साधु की संगति जन 'परमानंद' रंक कियौ।।

१३६१ **(सारंग)**

हरि–जसु गावत होइ सु होइ।
बिधि-निषेध के खोज परौ जिनि अनुभव देख्यौ जोइ।।
आदि मध्य अवसान बिचारत हरि स्वरूप ठहरात।
बीच ही एक अविद्या भासै बेद–बिदित इहि बात।।
राम–कृष्ण अवतार मनोहर भक्त–अनुग्रह–काज।
'परमानंददास' इहि मारग बीतत राम के काज।।

१३६२ (सारंग)

हरि के भजन मँह सब बात।
ज्ञान–कर्म सो कठिन करि कत देत हौ दुख गात।।
बदत[1] बेद–पुरान छिनु–छिनु साँझ अरु परभात।
संत–जन–मुख–द्रवत हरि–जसु नंदलाल–पद–अनुरात।।
नाहिंन भव–जलधि कोउ औरों बिघन के सिर लात।
दास 'परमानंद' प्रभु पै मारि मुख ए जात।।

१३६३ (सारंग)

हरि जू की लीला काहे न गावत।
राम-कृष्ण गोबिंद छाँडि मनु और ऽब कें कहा पावत।।
जैसें सुक–नारद मुनि ज्ञानी इहि रस अनुदिन पीबत।
आनँद–मूल कथा के लंपट इहि[2] रस–ऊपर जीवत।।
देखि बिचारि कहाँ धौं नीकौ जेइ भवसागर छूटै।
'परमानंद' भजन–बिनु साधें बाँध्यौ अविद्या फूटै।।

१३६४ (सारंग)

तुम्हरौ भजन सब ही कौ सिंगार।
जे कोउ प्रीति करै पद–अंबुज उर–मंडन निर्मोलक हार।।
कंचन–भूषन पाट–पटंबर मानहुँ लियें बहत सिर–भार।
मनुषा[3] –जनमु पूरब–फल पईयतु
भगति–बिना मिथ्या अवतार।।
जननी बाँझ भई बरु काहे न, गरभु गिरि न गए ततकार।
'परमानंद' प्रभु तुम्हारे भजन–बिनु
जैसें सूकर स्वान सियार •।।

१३६५ (सारंग)

कृष्ण–कथा–बिनु कृष्ण–नाम–बिनु
कृष्ण भगति–बिनु दिवस जात।
ते प्रानी काहे कौं जीवत
जे[4] नाहीं बदत[5] कृष्ण की बात।।

---

१. बदै (इ. ग. ङ. छ.), २. या (इ. ङ. च. छ), ३. मानुष (ग. च)
• पद सं० ४१ पर सूरसागर में भी पाठ–भेद परिवर्तन साम्य सहित
४. नहिं मुख (इ. क. ग. ङ. च. छ.), ५. बदत (ग)

स्रवन न कथा स्यामसुंदर की
राम–कृष्ण रसना न स्फुरत।
मानुष–जन्म कहाँ पावैगौ
ध्यान करहि[1] घनस्याम चतुर नट[2]।।
जो इहि लोगु परम सुख राखत
अरु परलोक करत[3] प्रतिपालु।
'परमानदंदास' कौ ठाकुर
अति गंभीर दीनानाथ दयालु।।

१३६६ (बिलावल)

ता तें गोविंद नाम लौं[4] गुन गायौ चाहौं।
चरन–कमल–हित प्रीति कर सेवा–निरबाहौं।।
जो हौं तुम में मिलि रहौ कछु भेद न पाऊँ।
प्रलै–काल के मेघ ज्यौं तुम माँझ समाऊँ।।
जीव–ब्रह्म अंतर नहीं कंचन–मनि जैसें।
जल–तरंग प्रतिमा–सिला कहिबे कौ ऐसें।।
जिनि[5] सेवा सचु पाइये पद–अंबुज–आसा।
सो मूरति मेरे हृदै बसौ 'परमानंददास'।।

(३) ब्रज–महिमा

१३६७ (सारंग)

• गोकुल के लोग बडभागी।
नित उठि कमल–नयन मुख निरखत
चरन–कमल के अनुरागी।।
जा कारन मुनि जप–तप साधत धुमर-पान तन कीनौ हो।
सोउ नंद जू के आँगन खेलत ज्यों पानी में मीनौ हो।।
आसन भोजन सयन परम रुचि मानत कुल कौ नातौ हो।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ग्वालिनि–सँग–रातौ हो।।

---

१. धरहि (इ. क. ग. ङ. च. छ.), २. मत (ग. ङ. च. छ.),
३. रटत (इ), ४. ल्यो (ग. ङ. छ.)
५. निज (क)
• मधुवन के० (क) से भी प्रारंभ

१३६८ (सारंग)

ब्रजवासी जानें रस–रीति।
जा कै हृदै और कछु नाहिंन नंद–सुवन–पद–प्रीति।।
करत महल में टहल निरंतर जात जाम पल[1] बीति।
सर्वभाव आत्मा निवेदित रहै त्रिगुनतातीति।।
उनकी[2] गति औरै नहिं जानत बीच जवनिका–भीति।
कोउक[3] लहै 'दासपरमानंद' गुरु–प्रसाद–परतीति।।

१३६९ (कान्हरौ)

गावति गोपी मृदु–मधु बानी।
जा के भवन बसत त्रिभुवन–पति राजा नंद जसोदा रानी।।
गावत वेद भारती गावति गावत नारदादि मुनि ज्ञानी।
गाबत गन[4] गंधर्व काल सिव गोकुलनाथ महातमु जानी।।
गावत चतुरानन जग–नायक गाबत सेस सहस–मुख–रास।
मन-क्रम-बचन-प्रीति पद अंबुज अब गावत 'परमानँददास'।।

१३७० (सारंग)

जब लगि जमुना गाइ गोवर्द्धन
जब लगि गोकुल गाउँ गुसाँई।
जब लगि श्रीभागवत–कथा–रस
जब लगि कलिजुग नाँई।।
जब लगि रस सेवक--सेवा–रस नँदनंदन सों प्रीति लखाई।
'परमानंद' तासों हरि क्रीडत
श्रीबल्लभ–चरन–रेनु जिनि पाई।।•

१३७१ (बिहागरौ)

कहा करों बैकुंठहि जाइ।
जहाँ नहिं नंद जसोदा[1] गोपी
जहाँ नहीं बच्छ[2] ग्वाल और गाँइ।।

---

१. सब (ब. ङ. छ.), २. इनकी (ग. घ. ङ. च)
३. कछुक लहत (ग. घ. ङ. छ),
४. गुन (घ. च)
५. जहाँ नहिं (ग.), ६. ग्वालवाल नहिं (ग.)
• यह दर अग्रिम पंक्ति परिवर्तन के साथ 'छीतस्वामी' पद सं. ४२ में भी प्राप्त

जहाँ नहिं निर्मल जल जमुना कौ
जहाँ[1] नहिं वृच्छ कदम की छाँइ।
'परमानंद' प्रभु चतुर ग्वालिनी
ब्रज–रज तजि मेरी जाइ बलाइ।।•

१३७२ (सारंग)

धन्य–धन्य वृंदावन–वासी।
नित-प्रति चरन-कमल-अनुरागी स्यामा-स्याम-उपासी।।
पारस कौ जो मरमु न जानै जाइ बसौ जो कासी।
भसम लगाइ गरें लिंग बाँधौ सदाई रहौ उदासी।।
अष्ट–महा–सिधि द्वारें ठाढी मुक्ति चरन की दासी।
'परमानंद' चरन–कमल भजि सुंदर घोष–निवासी।।

१३७३ (सारंग)

गोपिनि की सरभर कौन करै।
जिन की चरन–कमल–रज पावन ऊधौ सीस धरै।।
चतुरानन तै अधिक न कोऊ सोऊ पन इह जु बरै।
माँगत जनम लता–द्रुम–बेली तऊ अति जिय में डरै।।
इह अचरजु कहाँ लौं बरनौ जो मनु हरि कौ हरै।
'परमानंद' प्रभु चरन–कमल भजि सब कौ काज सरै।।

१३७४ (बिलावल)

लगै सखि ! वृंदावन कौ रंग।
तब अभिमान सबै छटि जैहै और विषइनि कौ संग।।
सखी भाव सहज होइ सजनी ! पुरुष–भाव होइ भंग।
श्रीराधावर सुमिरत–सेवत मिटै जो कोटि अनंग।।
तन के ताप सबै छुटि जैहैं मनसा ह्वै पंग।
'परमानंद' स्वामी गुन गावत उठै जो प्रेम–तरंग।।

१३७५ (मलार)

वृंदावन क्यों न भये हम मोर।
करत बिहार गोवर्द्धन–ऊपर निरखत नंदकिसोर।।
क्यों न भये बंसी–कुल सजनी अधर पिबत घनघोर।
क्यों न भये गुंजा–वन–बेली रहत स्याम जू की ओर।।

---

१. और नहीं कदमनि की (ग.)

• गोविन्द स्वामी (पद सं. ५७४) इसी तुक से प्राप्त भिन्न पद है।

क्यों न भये मकराकृत कुंडल स्याम–स्रवन झकझोर।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोपिनि के चित–चोर।।

१३७६ (सारंग)

• बने माधौ जू के महल।
जेठ[१] मास अति जुडात माघ मास कहल।।
दूरि भयें[२] देखियत है बादर के से पहल।
बीच–बीच हरित–स्याम जमुना के से दहल।।
ब्रजपति कैं कहा अनूप इहै बात सहल।
'परमानंददास' तहाँ करत[३] फिरत टहल।।

(४) श्रीयमुनाजी

१३७७ (रामकली)

श्रीजमुना इहै प्रसाद हौं पाऊँ।
तुम्हारे निकट बसौं निसि–बासर राम–कृष्ण गुन गाऊँ।।
मज्जन करौं बिमल पावन जल चिंता–कलुष[४] बहाऊँ।
तेरी कृपा भानु की तनुजा[५] हरि–पद–प्रीति बढाऊँ।।
बिनती करों इहै बरु माँगौं अधम–संग बिसराऊँ।
'परमानंददास'[६] सुख–दाता मदनगोपालहिं भाऊँ[७]।।

१३७८ (रामकली)

श्रीजमुनाजी ! दीन[८] जानि मोहिं दीजै।
नंद कौ लाल सदा वर माँगौं सब गोपिनि की दासी कीजै।।
तुम हौ परम कृपाल दयानिधि संत[९] जनन सुखकारी।

• *देखियत माधौ जू के० से भी प्रारंभ*
१. *ग्रीष्म रितु (क),*
२. *दूरि ही तें (अ.)*
३. *नीके करत (क.),*
४. *कलह नसाऊँ (अ.)*
५. *तनया (अ.),*
६ *चारिफल (अ. ग.)*
७. *गाऊँ (घ.) गोपाल लडाऊँ (अ.)*
८. *यहै दान (बं० ३,१), ९. चरन–सरन*

तिहारे बस बर्त्तत है राधावर तट क्रीडत गिरिधारी।।
ब्रज–नारी सब खेलत हरि–सँग अद्‌भुत रास–बिलासी।
तिहारे पुलिन–मध्य निकट कुंजद्रुम कमल पुहुप हैं सुवासी।।
स्रम–जल सहित न्हात सब सुंदरि जल–क्रीड़ा सुखकारी।
मनहुँ तारा मध्य चंद बिराजत भरि–भरि छिरकत नारी।।
रानी जू के पाँइ परौं नित गृह कौ कारज सब कीजै।
'परमानंददास–है इहि रस नैननि भरि–भरि पीजै।।

१३७९ **(विभास)**

तू जमुना गोपालहिं भावै।
जमुना–जमुना नाम उचारै धर्मराज ताकी न चलावै।।
जे जमुना कौ दरसन पावै जे जमुना–जल–पान करै।
सो प्राणी जम लोक न देखैं चित्रगुप्त लेखौ न धरैं।।
जे जमुना कौ जानि महातमु बारंबार प्रनाम करैं।
जे जमुना–अवगाहन–मंजन करैं चिंतन तन–ताप हरैं।।
पद्‌म पुरान कथा ए पावन धरनी मुख–वाराह कही।
तीर्थ महातमु जानि जगत-गुरु यह प्रसाद 'परामनंद लही।।

१३८० **(बिलावल)**

श्रीजमुना गोपालहि भावै।
जो जमुना के दरसन कीजै कोटि जनम के पाप नसावै।।
जे जमुना–अस्नान करत हैं बहुरयौ संकट और न आवैं।
जो जमुना–जल–पान करत हैं धर्मराज–लेखौ न गनावैं।।
पद्‌म पुरान कथा सब ऊपर धरनी सौं बाराह जसु गावैं।
ते तीरथ ए प्रगट जगत में 'परमानंद' प्रसादें पावै।।

१३८१ **(रामकली)**

जमुने ! पिय कौं बस तुम जो कीने।
प्रेम के फंद तैं घेरि राखै जो निकट
ऐसे निरमोल नग मोल लीने।।
तुम जो पगबत तहाँ अब धाबत
निसि–निसि तिहारे रस–रंग भीने।
'दासपरमानंद' पाइ अब ब्रजचंद
परम उदार अब जमुनेदीने।।

१३८२ (रामकली)

जमुना के साथ अब फिरत हैं नाथ।।
भक्त के मनोरथ पूरत सबै
कहाँ लौं कहिये अब इनकी जो बात।।
विविध सिंगारि भूषन अँग–अँग सजे
बरनी न जात सोभा बनी गात।
दास 'परमानंद' पाइ अब ब्रजचंद
राखि अपने सरन बहे जो जात।।

१३८३ (रामकली)

जमुना की आस अब करत हैं दास।
मन–क्रम–बचन करि जोरि कें माँगि़
निसि–दिन राखि अपने पास।।
जहाँ अब रसिकिनी राधिका
दोउ जने संग मिलि करत रास।
'दास परमानंद' पाये अब चंद
देखि सिरात मन–नैन मंद हास।।

१३८४ (रामकली)

जमुने ! सुख–कारिनी प्रान–पति के।
पीय जे भूलत जिन्हें सुधि करि देति
तिन्हें कहाँ लौं कहिये अति इनके हिति के।।
पिय–संग गान करै अति रस उमगि भरै
देत तारी करै हेत जिति के।
'दास परमानंद' पाइ अब ब्रजचंद
एक हि जानत अति प्रेम–गति के।।

१३८५ (विभास)

कालिंदी कलि–कलमल हरनी।
रवि–तनया जम अनुजा स्यामा महा सुंदरी गोविंद–धरनी।।
जै जमुना ! जैकृष्ण बल्लभा पतितनि कौं पावन भव तरनी।
सरनागत कों देत अभै–पद
जननी तजि जैसे सुत की करनी।।

सीतल मंद सुंगध सुधा–निधि धारा बधरत बपु उतरत धरनी।
'परमानंद' प्रभु परम पावन जुग–जुग साखि निगम नित बरनी।।

१३८६ (वसंत)

कालिंदी कूल–कलोल लोल। मधु–रिपु माधौ मधुरि बोल।।
वन–माला जो रचि पुनीत। सुंदर गावै वेनु–गीत।।
बहुत गोप बलभद्र–साथ महा आनंद–घन बैकुंठनाथ।।
देवकी–नंदन जनम–वादि। माया–मानुष देव आदि।।
'परमानंद' स्वामी गोपाल। सरनागति भय–हरन–काल।।

१३८७ (विभास)

अति मंजुल जल–प्रबाह मनोहर।
सुखवगाहन विदित राजत अति तरनि–नंदिनी।।
स्याम – बरन – झलक – रूप सेवत संतनि मनोज्ञ
अति सीतल सुखद वहति वायु – मंदिनी।।
कुमुद–कुंज वन–विकास मंडित द्रग–द्रग सुवास
कूजत कल हंस कूक मधुर–छंदिनी।।
विकसित अरबिंद कुंज कोकिला–सुख–सार–पुंज
कूजत अलि – वृंद गुंज बिबुध – बंदिनी।।
नारद सिव सनक व्यास ध्यावत मुनि करत आस
चाहत तुव पुलिन–वास दुख–निकंदनी।।
नाम लेत कटत पाप रसिक–वृंदमुनि–कलाप
'परमानंद' करत जाप महा आनंदिनी।।

• • •

(ग) प्रकीर्ण

१

•• नव भूषन नव वसन जसोदा सबहिनि कों पहिरायौ।
देत असीस बिरध नरनारी चिरजियौ जसुमति जायौ।।
याही भाँति सलौनौ तुमकौं गिरिधर नित नित आयौ।
जनम द्यौस नियरौ आयौ है घोष विचित्र बनायौ।।
ताल किन्नरी ढोल दमामें भेरि मृदंग बजायौ।
लीला जनम करम हरिजू की 'परमानंद' जसु गायौ।।

२

सुमिरों नंदराइ कुँबार।
नंद–आंगन करत रिंगन बदन विथुरे बार।।
चरन नूपुर, किंकिनी कटि कंठ कठुला हार।
करन पहुँची उरसि बधना तिलक सोहे लिलार।।
सुनत फिरिके चकृत चित निज किंकिनी झनकार।
ठठुकि दौरत निहिचे हँसत परम उदार।।
पंक लेपन अंग कीने नचत नैन सु ढार।
करि बडाई गोद जननी लेति मोद अपार।।
गहत बछरा–पुच्छ रोचत रूप जीत्यौ मार।
देखि परबसु हँसति गोपी मुगध तजति अगार।।
कुरके ढिंग जात खेलन फेर जननी लार।
काज विसरति सबै गृह के विग्रता के भार।।
बालकनि संग राजलीला करत व्रज गृह–द्वार।
देत आनंद जुवति जन कौ पठै गृह–गृह चार।।
करत चोरी भवन प्रति धँसि लेत मोर संसार।
पैठि जेंवत निडर पति ज्यों परोसि राखी थार।।

• यहाँ वे पद दिये जा रहे हैं जिनका प्रारम्भिक अंश अथवा अन्तिम पंक्तियाँ वा छाप प्राप्त नहीं हुए हैं। अग्रिम गवेषणा में यह सामग्री उपयोगी हो सकती है।

•• इसका प्रारंम्भिक अंश नहीं मिला

•••इसमें छाप नहीं है

देत माखन बनचरनि कौ बांटि बांटि अकार।
खसत चोहोंटी निपट बालक भजत देकर तार।।
माघ ढिग मोनो लगसुध साध मन टु खरार।
गोपी देन उराहनौ जुरि आवें अति ही सवार।।
सुमिरि कृत संकेत गोपी हँसति झूठी रारि।
बारि डारों निरखि सोभा रसिक बारंबार •।।

४ (कान्हरौ)

•• ब्रज जन सम धर पर कोउ नाहीं।

५ (कान्हरौ)

+ हरिजन–संग छनिक जो होई।

– श्रीकृष्णार्पणमस्तु –

• इसमें छाप नहीं है।

•• अष्टछाप वार्ता विद्याविभाग प्रकाशन में केवल प्रथम तुक ही प्राप्त है।

+ अष्ट छाप वार्ता विद्या विभाग प्रकाशन में केवल प्रथम तुक ही प्राप्त है।